चन्द्रसखी और उनका काव्य

—पद्मावती 'शबनम'

लोक सेवक प्रकाशन,

बुलानाला, बनारस।

प्रकाशक—

लोक सेवक प्रकाशन,

बुलानाला, बनारस।

प्रथम संस्करण

दो हजार प्रतियाँ

कार्त्तिक पूर्णिमा २०११

मूल्य—दो रुपया

(सर्वाधिकार स्वरक्षित है)

मुद्रक

वा. ग. शा[illegible]ित,

ललित प्रेस, पत्थरगली, बनारस १.

शिव को

शबनम

UNIVERSITY LIBRARY

सूची

पृ० सं०

दो शब्द ७
वस्तु कथा ६

समीक्षा

चन्द्रसखी और उनका काव्य ... ११

काव्य संग्रह

वन्दना १
निर्वेद ५
बाल-लीला ८
राधा-वर्णन १५
बांसुरी-वर्णन २३
वियोग ३३
प्रेम-माधुरी ५२
परिशिष्ट ७५

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	२	मीरा के ही.......रूपान्तर	मीरा के पदों के ही गेय रूपान्तर
६	४	उनको	उनके
११	११	में ही इन्होंने	में ही इसके प्रवर्तकों और साधकों ने
१३	१४	प्रज्वलित में.......हुई	प्रज्वलित करने में सहायक हुई
१३	१८	हिन्दुओं से.......बाध्य	हिन्दुओं से तिरस्कृत, मुसलमानों से संत्रस्त और आर्थिक कठिनताओं से बाध्य
१४	१३	सहायता को	सहायता भी
१६	६	सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलनों	और सांस्कृतिक आन्दोलनों
१६	२२	के	की

काव्य-संग्रह

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	६	मंजन	भंजन
१३	६	जायगी	जायगो
१५	१५	उजियारे	उजियारो
२०	१०	अबरी	अबीर
२१	८	पती	पाती
२७	१५	में	से
२८	२	खोली	खोलो
२८	४	किनन	दिनन
३२	२	इस पद का निम्नांकित एक पाठभेद	इस पद का एक पाठभेद

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४	१०	करिवी	करि
३४	१८	रहे	यो
३५	१६	पूर	दूर
३५	१७	तूर	पूर
४०	१७	उर्ध्वांशों	अर्धांशों
४४	१९	प्रतीत	प्रीत
५३	१६	माग	मग
५६	३	मे	में
५६	५	चन्द्रसखी के······ पदों में	चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित अन्य पदों में
५७	१७	ध्यारी	प्यारी
५८	४	कृष्ण विभिन्न की	कृष्ण की विभिन्न
५८	१८	बताल	पताल
६३	८	पदाभिव्यक्ति तेल पूर्वापद	पदाभिव्यक्ति में पूर्वापर
६४	४	घर	पर
७१	२	रनत	रतन
७१	१४	हरि	हेरी
७१	१५	भज्यो	भग्यो
७४	१०	सोख	सीख
७६	ड,	ऐसी मान्यता है। इस कांगन	ऐसी मान्यता है कि इस कांगन
७७	प,	पची	हरी
७८	म,	मरघत	मरघन
७९	ल,	लुम्बे, लुम्ब रेशभ	लुम्बे, लुम्बा रेशम
८०	८,	वृत्ति	हेतु

दो शब्द

मीराँ ने जिस प्रकार अत्यन्त तन्मयता और माधुर्य वृत्ति के साथ भगवान श्री कृष्ण के अध्यात्मरूप को लौकिक माधुर्य के साथ समन्वित करके भक्ति का अत्यन्त मनोहर उदात्त और आकर्षक स्वरूप उपस्थित किया और अपने मधुर आत्मलीनतापूर्ण सरस गीतों से सहस्त्र कंठों को निरन्तर तृप्त करती आई हैं; उसी प्रकार चन्द्रसखी ने भी उसी निष्ठा और भावना में रसमग्न होकर उसी भावुकता को पल्लवित करके जो काव्य रूप में प्रेमोद्रेक किया है, वह आज भी सम्पूर्ण ब्रज मण्डल, राजस्थान तथा उसके आसपास के प्रदेशों के लोक कंठों में अभी तक अपनी नैसर्गिक मधुरिमा के साथ गूँजता चला आ रहा है। उसी काव्य-धारा को पुस्तक रूपी गागर में रसिकों के लिये संग्रहित करके पद्मावती जी शबनम ने जो अभिनन्दनीय प्रयास किया है वह स्तुत्य है। शबनम जी के इस सराहनीय कार्य से हिन्दी संसार सदा उपकृत रहेगा।

सीताराम चतुर्वेदी

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी, पाली, प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृति) बी. टी., एल. एल. बी., साहित्याचार्य ।

वस्तु-कथा

मीराँ और उनके काव्य का अध्ययन करते हुए मुझको चन्द्रसखी के कुछ पद ऐसे मिले जो मीराँ के ही पदों के ही गेय रूपान्तर कहे जा सकते हैं। अस्तु चन्द्रसखी के नाम पर प्राप्त पदों की सहज, सरल-भावनाओं के कारण उनको पदों को संग्रहित करने की व्यापक उत्कंठा मुझमें जगी। उनके जीवन वृत्त पर अध्ययन करने का भी मैंने प्रयत्न किया। अपने इसी प्रयत्न के फलस्वरूप जो कुछ संग्रहित कर सकी उसको प्रकाशित करते संकोच भी होता है और उत्साह भी। अपने प्रयास की सीमा मेरे संकोच का कारण है। इतने पर भी उत्साह इस आशा से होता है कि मेरे इस सीमित प्रयास को देखकर साहित्य के महान अनुशीलक इस उपेक्षिता कवियित्री पर सर्वांगीण नवीन अनुसंधानात्मक प्रकाश डालेंगे। साहित्य सेवियों से मेरी विनम्र प्रार्थना भी है कि अवश्य ही अपने सहयोग द्वारा मेरे उत्साह का परिवर्धन करने का प्रयत्न करेंगें।

सम्मानित विद्वानों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश भी अवांछित है। तब भी कहना ही होगा कि हिन्दी के प्राचीन सेवक पंडित श्री सीताराम जी चतुर्वेदी ने आशीर्वाद देकर मेरा उत्साह वर्धन किया है।

मेरी सुपुत्री ऊषा ने जो योग इस पुस्तक के प्रकाशन में दिया, वह स्मरणीय तथा मूल्यवान है।

अपनी सीमाओं को जानती हूँ, अतः प्रस्तुत पुस्तक की त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

काशी

दीपावली सं. २०११ वि.

चन्द्रसखी और उनका काव्य

मध्यकालीन भारतवर्ष का इतिहास सर्वतोमुखी गम्भीर आलोड़न का द्योतक है। सम्राट हर्ष वर्धन के बाद भारतीय राजाओं की एक छत्र सत्ता के साथ केन्द्रीय हिन्दू सत्ता भी समाप्त हो गयी। बलवान एवं सुदृढ़ केन्द्र के अभाव में देश छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। इन छोटे-छोटे राज्यों के अधिपति हिन्दू राजा ही थे अतः राजनैतिक दृष्टि से एक विशृंखलता आ गई तथापि इसके अन्तर्निहित परोक्ष रूपेण बहने वाली हिन्दूधर्म और संस्कृति युक्त जातीय जीवन के विकास की धारा अपनी निश्चित गति से अबाध बहती रही।

इस धारा की गति कभी कभी क्षीण होती सी प्रतीत होती है तथापि वह विलुप्त न हो सकी क्योंकि जनकल्याण हेतु अपने जीवन को उत्सर्ग कर देने में ही इन्होंने अपनी सार्थकता समझी। साथ ही ये साधक

युग की माँग के प्रति पूर्ण रूप से सजग थे। अपनी चेतना और उत्सर्ग की गम्भीर भावनाओं के कारण इन्होंने एक ऐसा उच्च स्थान प्राप्त कर लिया जो सदैव पूजित होता रहा। समय के साथ साथ सम्मानित शासक बदलते रहें परन्तु युग को चेतना की गति से जीवन देने वाले ये साधक सदा पूजित रहें।

ये छोटे-छोटे राज्य अपने ही व्यक्तिगत स्वार्थ और तदजनित् क्रिया-प्रतिक्रिया में इतने अधिक राग-रंजित हो गये कि बाहर से आने वाले महान् संकटों का ध्यान भी भूल बैठे। भारतवर्ष की इस स्थिति का बाहर के लोगों ने पूर्ण लाभ उठाया। अस्तु, यवनों के आक्रमण बराबर होते रहे। इस्लाम का नारा बाहर से आये इन आक्रमण कारियों के कठोर सैनिक संगठन के लिये आधारशिला सिद्ध हुई। धर्म के आवरण में इन आक्रमणकारियों के स्वार्थ की पूर्ति सहज सम्भव हो सकी। स्वधर्म के प्रचार के लिये मरमिटने के गौरव पूर्ण नारे लगा लगाकर इन सुल्तानों ने अपने सैनिकों में युद्ध के लिये अदम्य उत्साह पैदा किया। तत्कालीन हिन्दू राजा परस्पर उलझने वाली विशृंखल नीति से स्वयं ही निर्बल हो गये थे और बाहर से आनेवाले आक्रमणकारी नये धर्म प्रचार के उत्साह से चेतना प्रबुद्ध थे।

क्रमशः हिन्दू राजा पराजित होते गये। पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद से मुस्लिम शासन की सुदृढ़ नींव पड़ने तक (विक्रम की बारहवीं से पन्द्रहवीं) इन तीन शताब्दियों में भारतवर्ष एक बड़े गहरे उथल-पुथल से गुजर रहा था। इन तीन शताब्दियों में गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद तथा लोदी आदि विभिन्न मुस्लिम राज-वंशों ने देश पर राज्य किया। दिल्ली

का सिंहासन निरंकुश एवं एकछत्र-शक्ति का प्रतीक बना। इस शक्ति को येन केन प्रकारेण प्राप्त करना ही शौर्य की मर्यादा की सीमा समझा जाने लगा। कहा जा सकता है कि एक तरह से सम्पूर्ण भारत विभिन्न फौजी खेमों में बंटा हुआ था और निरंकुश सैनिक नियमन ही राज्य का एकमात्र विधान था।

अपने सैनिकों के धार्मिक उत्साह को बढ़ाये रखने के लिये सुल्तान शासकों ने धर्म के ठेकेदार उलमाओं और मुल्लाओं के आड़ में हिन्दू जनता के प्रति सर्वतोमुखी दमन व शोषण नीति को अपनाया। हिन्दू योग्य होने पर भी महत्व के ऊंचे ऊंचे पदों से अलग रखे जाते। उनको अपमान जनक कर जजिया आदि देना होता था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम इतर जनता सदा ही एक सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक शोषण नीति के जुए के नीचे पिली जाने को विवश थी। भौतिक सुख सुविधा धार्मिक उन्माद को प्रज्वलित सहायक करने में हुई। इस आंतक और असुविधा से घबरा कर कुछ हिन्दुओं ने मुस्लिम-धर्म स्वीकार कर लिया तथापि अधिकांश जनता अपनी विवशता से संत्रस्त थी।

धर्म परिवर्तन करने वालों में भी अधिकांश छोटी जाति के थे। हिन्दुओं से तिरस्कृत और मुसलमानों से संत्रस्त आर्थिक कठिनताओं से बाध्य इन छोटी जाति के लोगों मे अनेकों ने इसलाम-धर्म स्वीकार कर लिया। यद्यपि तत्कालीन इतिहास के पृष्ठ और लोकगीतों की गूंज चकाचौंध उत्पन्न करने वाली चांदी के वैंभवपूर्ण झंकार से लयमय है तथापि उसकी सीमा बहुत संकुचित है। कर्मजीवी के सम्मुख जीवन की साधारण

आवश्यकताओं की येन केन प्रकारेण पूर्ति ही गम्भीर समस्या थी।

तब भी, अमीर उमरावों और जागीरदारों के पास बहुत बड़ा धन वैभव था जो उनकी स्वेच्छाचारिता और नृशंसता की पूर्ति में ही खर्च होता था। देश की अपार धनराशि का उपयोग विलासिता और सैनिक संगठन के हेतु ही होता था।

किसी भी देश की उन्नति उसके कृषि और व्यापार पर निर्भर है। सैनिक संगठन और विलास में लिप्त इन सुलतानों ने देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने पर कोई ध्यान नहीं दिया। भारतवर्ष सदैव एक कृषि प्रधान देश रहा है, अतः इस देश में ग्राम-जीवन विशेष महत्वपूर्ण रहा है। व्यापार की स्तिथि भी बुरी नहीं थी तथापि नित्यप्रति के विद्रोह, क्रान्ति आवागमन के साधन की दुरूहता और युद्ध के कारण कृषि और व्यापार दोनों ही पनपने नहीं पाते थे। अकाल आदि विशेष कठिन परिस्थितियों में सुल्तानों से कृषकों को सामयिक सहायता को मिलती थी परन्तु वह ऐसी नहीं थी जो उनके उद्योग का विकास कर सके। यद्यपि कुछ शासकों ने व्यक्तिगत रूप से उद्योग-धंधे के विकास का प्रयास किया तथापि इस ओर कोई विशेष प्रभावकारी ध्यान नहीं दिया। आये दिन के युद्ध और विद्रोहों से उत्पन्न अशान्त स्थिति के कारण कृषि और वाणिज्य को अत्यधिक क्षति पहुँची फिर भी देश में धन की कमी नहीं थी। जन-जीवन और अमीर उमरावों तथा शासकों के जीवन में बड़ा अन्तर था। अमीर खुसरो का कहना है कि "शासकों के मुकुट का हर मोती किसानों के रक्तबिन्दुओं से बना है।" जीवन की इन कठिन परिस्थितियों का सामना निम्न कोटि के मुसलमानों को भी

करना पड़ता था। हिन्दू हों या मुसलमान जन-साधारण के परिश्रम का उपभोग सुल्तान करते थे। जन-साधारण की कमाई सुल्तानों के सैनिक संगठन और विलास-प्रियता में जाती थी।

राज्यकर्ता और शक्ति का अनुकरण प्रायः हमेशा ही होता आया है। इन सुल्तानों का अनुकरण समाज के उच्च वर्गीय सामन्तजनों ने भी किया। हिन्दू जनता अपने ही निकटस्थ देशवासियों द्वारा भी इस बुरी तरह शोषित होकर स्तम्भित हो उठी क्योंकि सुदृढ़ राज्य की संरक्षता को खोकर जनता अपनी सुरक्षा के लिये इन्हीं सामन्तों पर निर्भर थी।

मुसलमान शासकों की इस दमन-नीति का विरोध कोई भी खुल कर नहीं कर सकता था, अतः अपने बचाव के लिए हिन्दुओं ने अपने सामाजिक जीवन की सेवाओं को संकुचित कर उसमें दृढ़ता लाने का प्रयास किया। इस प्रयास से वे अपनी संस्कृति के आडम्बर को सुरक्षित रखने में तो वे सफल अवश्य हुए परन्तु उसकी रसात्मकता को न बनाये रख सके। बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा, पर्दा, और इन सब के कारण स्त्रियों की अशिक्षा, दास-प्रथा आदि कुरूतियों ने अपना पूर्ण अधिपत्य जमा लिया। अज्ञान और अन्ध विश्वास का व्यापक प्रसार हुआ। तब भी तत्कालीन परिस्थियों में यह संभव नहीं था कि हिन्दू और मुसलमान सर्वथा अलग रह सकें। समय के साथ ही साथ मुसलमानों का धार्मिक उन्माद और विजेता की दर्पमयी भावनाओं में कमी आयी। राज्यश्री खो कर हिन्दुओं में भी वह स्वाभिमान की भावना अब न रह गयी थी जो उनकी जातीय विशिष्टता थी। एक साथ बसते बसते विरोधी तत्वों के बर्तमान रहते हुए भी परस्पर सहयोग

और सम्मिश्रण तो हुआ ही। मुसलमानों ने हिन्दुओं की लड़कियों से शादियां की। इन वैवाहिक सम्बन्धों के कारण मुसलमानों पर भी हिन्दू-धर्म का प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं इन सम्बन्धों के कारण दोनों ही धर्म और संस्कृतियों पर एक दूसरे का गहरा प्रभाव पड़ा।

जन-जीवन हमेशा ही चतुर्मुखी होता है। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव जीवन पर और जीवन का प्रभाव समाज पर अवश्य ही पड़ता है। यह आलोड़न ही नवजीवन के लिए वह प्रेरणा बन जाती है जो समयानुकूल जनता की रागात्मक-वृत्ति को गौरव पूर्ण ढंग से तृप्त कर सके। कालान्तर में यह प्रेरणा ही पल्लवित होकर धार्मिक आन्दोलनों का रूपक ले लेती है।

धार्मिक दृष्टि से विक्रम की तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इस समय तक देश में प्रायः बौद्ध-धर्म का लोप हो चुका था। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित "अहम् ब्रह्मास्मि" की भावना के साथ ही साथ ब्राह्मण धर्मानुमोदित जटिल कर्म-काण्ड का आधिपत्य था। बाममार्गियों में मंत्र-तंत्र साधना से विशिष्ट अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर लेना ही व्यक्तित्व के प्रस्फुटन की चरम सीमा समझी जाती थी। धर्म की सीमा पण्डितों के खण्डन-मण्डन, वितण्डावाद ब्राह्मण धर्म की जटिलता, वाम-मार्ग की कठोर आडम्बर पूर्ण साधना आदि में संकुचित हो गई थी—युग की शोषित और संत्रस्त जनता को ऐसा कुछ न मिल सका जो उसकी रागात्मिका-वृत्ति को संतृप्त कर उनके जीवन-बेदना को यत् किंचित् सान्त्वना और सरसता प्रदान कर सकता।

निम्न श्रेणी के जनता की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। शासकों से

अवहेलित और सामाज के उच्च वर्ग से शोषित, इनका जीवन मूर्तिमान हाहाकार बन उठा था। कोरा बुद्धिवाद, या कर्मकाण्ड या अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति विशिष्ट व्यक्तियों मात्र का आकर्षण बन सकती थी परन्तु जनता को जीवन की रसात्मकता नहीं दे सकती थी। इस समय एक ऐसे रागात्मक धर्म की आवश्यकता थी जो जन-जीवन को समस्त दुःख-दर्द से छुड़ा कर अपने में तन्मय कर ले।

युग की इस आवश्यकता को अपनी साधना से प्रदीप्त करने वाले साधक स्वयं उच्च-वर्ग की क्रिया-कलाप का शिकार बन गये तथापि अपने भौतिक जीवन के दुःख और दैन्य की तथा विडम्बनापूर्ण व्यक्तिगत लाँछनाओं कि सर्वथा अवहेलना कर अपनी साधना में पूर्ववत् तन्मय रहे। जन-जीवन के लिये नीलकंठ बने हुए इन साधकों ने जीवन को एक नयी चेतना दी और समाज के लाँछित व पद-दलित वर्ग के लिये एक मात्र विश्राम-स्थल बन गये।

इसी समय दक्षिण भारत से एक पुकार उठी, "जाति पाँति पूछे नहीं कोई, हरी को भजे सो हरी को होई"। युग की माँग इस ललकार में समा गयी। यह भक्ति मार्ग कोई नया धर्म नहीं था। अपितु, वेद, उपनिषद आदि से प्रतिष्ठित, गीता और भागवत से अनुमोदित था। भागवत में नवधा भक्ति का विश्लेषण किया गया है। ज्ञान कर्म और उपासना, भक्ति के मुख्य अंग बताये गये हैं। विभिन्न महात्माओं ने समयानुसार विभिन्न अंगो को विशेष महत्व दिया। बारहवीं शताब्दी में श्री रामानुजाचार्य ने भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया। वे स्वयं वैष्णव थे। उनका कहना था कि ब्रह्म और जीव में वही सम्बन्ध है जो समुद्र और लहर में है,

सूर्य और धूप में है, यद्यपि दोनों एकरूप हैं, एकात्म हैं तथापि न तो लहरें ही समुद्र हैं, न धूप ही सूर्य है। इस तरह शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद या "अहं ब्रह्मास्मि" के सिद्धान्त का खण्डन कर श्री रामानुजाचार्य ने विष्णु-पूजा का प्रचार किया।

चौदहवीं शताब्दी में श्री रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में श्री रामानन्द भक्ति-मार्ग के दूसरे उन्नायक हुए। रामानन्द का धर्म जन-साधारण का धर्म था। अस्तु, न उस में पण्डितों की भाषा की जटिलता थी न ब्राह्मण धर्म का वर्ग-भेद था। अतः समाज में निम्न मानी जाने वाली जातियाँ इस नवीन धर्म से विशेष प्रभावित हुईं। रामानन्द के शिष्यों में जुलाहे, चमार, नाई, कोरी, आदि सभी को स्थान प्राप्त था। इन में से कुछ शिष्य विशेष प्रसिद्ध हुए हैं, जैसे भक्त रैदास, जो रविदास, रोहीदास आदि भिन्न नामों से भी प्रसिद्ध हैं, चमार थे, भक्त छिपी नाई थे, भक्त सदना कसाई थे। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए भक्त कबीर जो जुलाहे थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बीच की खाई पाटने का बड़ा महत्वपूर्ण प्रयास किया। कबीर ने दोनों ही धार्मिक मतों की आडम्बरयुक्त रूढ़ियों का खण्डन कर ईश्वर-प्राप्ति के लिये स्नेहमय निर्मल हृदय की आवश्यकता का प्रतिपादन किया।

भक्ति द्राविड़ उपजी, लाये रामानन्द।
प्रकट करी कबीर ने, सप्त दीप नौ खंड॥

इस भक्ति-आन्दोलन ने पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में विशेष जोर पकड़ा। इसका क्षेत्र सीमित न रहकर देश व्यापी हो गया। बंगाल

में चैतन्य महाप्रभु, पंजाब में सिक्खों के गुरू नानक साहब, राजस्थान में मीराँ, महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, तुकाराम, रामदास, और ब्रज में सूरदास, अवध में तुलसीदास और जायसी आदि संत एवं भक्त कवियों ने इस भक्ति-आन्दोलन का नेतृत्व किया।

इन संत-कवियों ने जनता की दुर्दशा का उनके बीच रह कर अनुभव किया था। राज और समाज के आडम्बर युक्त खोखली जीवन-शैली के प्रति विरोधात्मक भावनाओं के कारण इन में से अनेक भुक्त-भोगी थे। मीराँ को मेवाड़ का राजकुल और पितृकुल दोनों को त्यागना पड़ा, तुलसीदास को भाषा में रामचरित मानस की रचना करने के पुरस्कार में पत्थर सहने पड़े, दाने दाने के लिये ललजाना और बिललाना पड़ा, कबीर साहब को वृद्धावस्था में काशी से मघहर जाना पड़ा। इतना ही नहीं, ये भक्त जन प्रायः दैनिक जीवन की अत्यावश्यकताओं की पूर्ति में भी असमर्थ रहते थे। सम्भवतः किसी ऐसे ही क्षण में कबीर ने कहा होगा।

"साँई इतना दीजिये, जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, अतिथी न भूखा जाय।"

इन भक्तों ने अपने हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति जन-साधारण की भाषा में ही की। भक्तों के ये उद्‌गार जन-जीवन के लिये वरदान बन कर आये क्योंकि इनमें छन्द, अलंकार आदि साहित्यिक चमत्कारों से मुक्त, दैनिक जीवन से सम्बन्धित मानव हृदय की कोमलतम भावनाओं की अभिव्यक्ति पूजा और पूजनीय के माध्यम से गौरवान्वित और संतुलित होकर अबाध गति से प्रस्फुटित हुई। ऐसे ही

भक्त-कवियों की परम्परा में चन्द्रसखी का नाम भी सम्मानपूर्वक लिया जा सकता है।

हमारे देश के इतिहास में राजस्थान को एक अत्यन्त गौरवमय और उज्ज्वल स्थान प्राप्त है। लोहे की झंकार और जौहर की अग्नि के बीच से भी कला और भक्ति की साधना के मधुर गीत पुनः पुनः गुँजरित होते रहे हैं। आन और शान की मर्यादा पर अपने सर्वस्व को हँसते-हँसते होम देने वाले राजपूतों ने धार्मिक स्वातंत्र्य को सहज ही अपना लिया। इतिहास बताता है कि समय-समय पर विभिन्न मतों तथा उनके अनुयायिओं को राजस्थान में सदा ही सहानुभूतिमय प्रश्रय मिला। इस सहानुभूतिमय वातावरण के कारण राजस्थान में नाथ, संत, वैष्णव सभी मतों का विकास हुआ और सभी अपना-अपना गहरा प्रभाव जन-जीवन और राजदरबारों में समान रूप से छोड़ गये। मेवाड़ कुल तिलक "हिन्दुवाणे सूरज" राणा कुम्भ स्वयं "परम वैष्णव" प्रसिद्ध थे। कृष्ण-प्रेम में विभोर हो स्वयं भी इन्होंने काव्य-रचना की है। महाराणी झाली, कबीर के गुरुभाई और प्रसिद्ध भक्त, चर्मकार रैदास की शिष्या थीं। मेवाड़-राज्य के कुल-देव ही एकलिंग जी थे। एकलिंग जी के पुजारी नाथ-पंथानुयायी होते थे। अजब कुँवर बाई, महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षित हुई थीं और अपनी दृढ़ भक्ति-भावना के लिये प्रसिद्ध थीं। राव दूदा प्रसिद्ध "परम वैष्णव" थे तो वीरश्रेष्ठ जयमल की भक्ति ही अतुलनीय थी। कहा जाता है कि उनकी भक्ति से प्रसन्न हो स्वयं रणछोड़ जी ने उनके बदले में उन्हीं का रूप धारण कर सैन्य-संचालन किया था। अस्तु, स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन राजस्थान रण-बाँकुरे राजपूतों की तलवार

की झंकार और संतप्त हृदय को शान्ति देने वाली भक्त-कवियों की गहन गम्भीर वाणी की गूँज से एक साथ ही गूँज उठा था। महलों और अवगुंठन की सीमाओं में आबद्ध राजस्थान का स्त्री-समाज भी यहाँ पीछे न रह सका। आज भी, कितनी ही भक्तीमती स्त्रियों द्वारा रचित काव्य जन-कंठ हार बने हुए हैं।

संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इतिहास साक्षी है कि समय समय पर स्त्रियों ने परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य रचना तथा जीवन-साधना में सदैव सक्रिय भाग लिया है। ऋग्वेद-कालीन सामाजिक जीवन में स्त्रियों को एक उच्च स्थान प्राप्त था। इस काल में स्त्री-जीवन को बाँधा नहीं गया था। क्षमता-प्राप्त स्त्रियों को जीवन के हर क्षेत्र में विकास का पूर्ण अवसर दिया जाता था। साहित्यिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक सभी क्षेत्र में स्त्रियों का प्रवेश था। ऋग्वेद संहिता में कई कवयित्रियों की रचना मिलती है। रोमाशा ब्रह्म-वादिनी थीं, तो लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामायनी, पुलोमी, शची आदि मंत्र-द्रष्टा थीं, इनके द्वारा रोचक महत्वपूर्ण ऋचाएं मिलतीं हैं। इतना ही नही, समर-भूमि में स्त्रियों द्वारा प्राप्त सक्रिय सहयोग के स्पष्ट वर्णन मिलते हैं। विष्पला, कैकेयी आदि इसका उदाहरण है। समाज में स्त्री रक्षिता या कामिनी नहीं समझी जाती थी। अपितु वह जीवन-साथिनी और सहधर्मिणी थी। बाल-विवाह, पर्दा, सती-प्रथा आदि कुरूतियों का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के द्योतक कितने प्रसंग मिलते हैं, उनसे स्पष्ट हो उठता है कि स्त्री-पुरुष दोनो ही व्यक्तिगत समस्याओं के निर्णय में पूर्ण स्वतंत्र थे।

इतिहास के पृष्ठों के संग ही संग स्त्री-जीवन के चित्र भी बदलते गये। आर्य-अनार्य संघर्षों के कारण उपस्थित वातावरण में स्त्री-स्वातंत्र्य पूर्ववत् स्थिर न रह सका। स्वातंत्र्य को खोकर स्त्री-जीवन का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित हो गया। इस सीमा ने उनके ज्ञान और अनुभव को सीमित कर दिया। अस्तु, उनका आदर क्रमशः कम होता गया। साथ ही साथ, वैदिक काल का प्रकृतिमय मुक्त जीवन तपस्या की रूढ़ियों में बँधने लगा था। वैराग्य की इस रूढ़िगत भावना के विकास के साथ ही साथ स्त्री के प्रति आदर कम होने लगा, उपेक्षा और अवहेलना क्रमशः बढ़ती गयी।

नारीत्व की यह सीमा रामायण-काल में और भी अधिक संकुचित हो उठी। दशरथ जैसे धर्म-प्रिय राजा का वृद्धावस्था में भी पुत्र-प्राप्ति के व्याज से विवाह करना, बाली को मार उसकी स्त्री तारा को मर्यादा पुरुषोत्तम राम द्वारा सुग्रीव को दिया जाना, सास-ससुर के स्नेहमय आग्रह को तोड़ जनकपुर और अवध के अतुल वैभव को "तजि बटुक की नाईं" बनवास के कठिन जीवन में साथ देनेवाली सर्वथा निर्दोष सीता की अग्नि-परीक्षा का लिया जाना आदि इसके उदाहरण हैं। इतने पर भी, एक रजक के कहने मात्र से सीता का परित्याग भी ऐसी शोचनीय स्थिति में कर दिया जाता है जहाँ साधारण मानवता भी लजाती है तथापि पुरुषोत्तम राम की मर्यादा अक्षुण्ण है। इस सबके बाद भी अपने पातिव्रत की दुहाई देकर ही सीता माँ, धरित्री की गोद में आश्रय माँगती हैं। इस रामायणकालीन विवशा व्यक्तित्वहीना नारी को धर्म और समाज के ठेकेदारों ने आदर्श, त्याग और सेवा के सुन्दर डोरों में बाँध रखा। इतनी जटिल बन्धनों में बन्धी नारी पुरुष

की शारीरिक शक्ति, स्वार्थ और अनाचार के सम्मुख नतमस्तक होने के लिए विवश कर दी गई। आज की नारी की दुलबंता और विवशता की करूण कहानी में सीता की कथा पुनः पुनः लद्वित हो उठती है।

महाभारत काल से स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का क्रमशः पतोन्मुख होना विशेष रूप से स्पष्ट हो जाता है। गान्धारी, द्रौपदी, कुन्ती, दमयन्ती आदि अनेकों ऐसी स्त्रियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। जो अपनी कुशाग्र बुद्धि और विवेक के कारण सदा ही सम्मानित रहीं हैं। तथापि भीष्म पितामह, गुरू द्रोणाचार्य और कौरवाधिपति महाराज कुरू, भक्त विदुर आदि सभी के सम्मुख भरी सभा में उसी राजकुल की एक बहू का धर्मराज द्वारा जुए के दाँव पर लगाये जाने और हार जाने पर द्रौपदी को भरी सभा में नग्न किए जाने के अवसर पर कोई भी विरोधात्मक ध्वनि कहीं से नहीं उठती। केवल योगीराज कृष्ण इस घोर-दुष्कर्म का सक्रिय विरोध करते हैं। यद्यपि जुए के इस अनोखे खेल में देश-व्यापी युद्ध का बीजारोपण हुआ तथापि सम्पूर्ण महाभारत-ग्रन्थ में कहीं भी उपर्युक्त घटना का विरोध नहीं किया गया। इतने पर भी द्रौपदी द्वारा पति-सेवा और पति-पूजा के ही महत्व का प्रतिपादन किया गया है। ऐसी घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति विशेष सम्मानित नहीं थी तथापि अपनी व्यक्तिगत योग्यता और दृढ़ता के आधार पर स्त्री अपना प्रभुत्व जमा लेने में सफल हो सकती थी। समाज अपनी शक्ति से स्त्री को सर्वथा कुचल नहीं पाया था।

हिन्दू विधान ने जहाँ एक ओर नारी के जीवन का मार्ग मात्र पति-सेवा में ही अवरुद्ध कर दिया वहीं दूसरी ओर स्त्री को माया, साकार पाप, साँप की तरह विषाक्त, नर्क का द्वार, चंचला, दुश्चरित्रा, और कृतघ्ना आदि उपाधियों से विभूषित भी किया।

इस तरह अवरुद्ध और लाँछित नारी-जीवन मुक्ति पाने के लिए आकुल हो उठा। बौद्ध-धर्म का प्रसार हो चुका था। बौद्ध-धर्म में नारी को भी दीक्षा लेने का अधिकार दिया गया। अपने जीवन की जटिल शृंखलाओं को ढीला करने का यह प्रथम स्वर्ण अवसर पाकर बहुतों ने दीक्षा ले ली। शासक वर्ग और उच्च वर्ग की स्त्रियों से लेकर साधारण वर्ग की स्त्रियों ने भी दीक्षा ली। यहाँ तक कि, सुजाता, अम्बपाली आदि प्रमुख जनपद-कल्याणियाँ भी कालान्तरमें प्रसिद्ध भिक्षुणियाँ हुईं। परन्तु यह स्थिति भी अधिक दिन न रह सकी। राजाश्रय प्राप्त मठो में भ्रष्टाचार तीव्र गति से फैला और प्रतिक्रिया स्वरूप नारी एकबार फिर पुरातन बन्धनों में जटिलता से जकड़ दी गई तथापि पुरुष की उच्छृन्खल प्रकृति पर कहीं कोई रोकटोक नहीं रखी गयी। पुरुष के लिये बहु-विवाह करने के साथ ही साथ, खुले आम बहुत सी वेश्याओं को अन्तः पुर में रखना निषिद्ध नही समझा जाता था। हारे या मारे जाने वाले विपक्षी के अन्तःपुर की स्त्रियों पर विजेता का अधिकार सहज स्वाभाविक समझा जाता था।

तत्-कालीन समस्त राजस्थान विभिन्न सामन्तों में विभक्त हो चुका था। ये सामन्त व्यक्तिगत स्वार्थ, और झूठी अहंकार तृप्ति को लेकर आपस में आये दिन जूझते रहते थे। सामन्तों की उच्छृन्खल प्रवृति के कारण अन्तःपुरों का वातावरण अत्यधिक विलास-प्रिय हो उठा था। इस

विलास-प्रिय वातावरण में नारी का केवल शृंगारयुक्ता कामिनी रूप ही प्रिय हुआ।

तत्कालीन समाज में नारी केवल भोग्या बनकर रह गयी थी। उसका यह रूप भी सर्वथा अरक्षित और विपदग्रस्त था। व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये सदा संघर्ष लिप्त रहने वाले किसी भी सामन्त के भ्रूकटाक्ष मात्र से ही स्त्री का सुहाग सदा के लिये बिखर सकता था, माँ की गोद खाली हो सकती थी, बहन की इज़्ज़त लुट सकती थी। जीवन की इस अनिश्चित परिस्थिति में बहु-विवाह, बाल-विवाह, और सती-प्रथा जैसी कुप्रथाओं के कारण नारी जीवन और भी असंतुष्ट हो उठा था।

इन सामाजिक विभिषिकाओं को राजनैतिक परिस्थितियों ने और भी गहरा रंग दिया। राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में नारी की परिसीमाएँ इतनी अधिक जटिल एवं संत्रस्त हो उठी कि फलस्वरूप वह केवल शृंगारयुक्ता भोग्या, कामिनी और संरक्षिता के रूप में एक अनिवार्य भार मात्र बन कर रह गयी।

बौद्ध-धर्म के ह्रास के बाद अद्वैतवाद और ब्राह्मण-धर्म का आधिपत्य रहा। अद्वैतवाद के खण्डन-मण्डन तथा ब्राह्मणधर्मानुमोदित कर्म-काण्ड की जटिलता में समाज को अपनी विषमताओं का समाधान नहीं मिल पाया। अस्तु, वह अपनी विषमताओं को किसी सुदृढ़ अनुरागमयी साधना में समर्पित कर भौतिक दुःखों से त्राण पाना चाहता था। अनुराग मानव-हृदय का एक अति प्रबल पक्ष है अतः भक्ति के इस मार्ग के अन्तर्गत समाज को अपनी विषमताओं को आराध्य-चरणों में समर्पित कर अपने जीवन को उल्लास और स्नेह से भर लेने का मौका मिला।

तत्कालीन सम्पूर्ण समाज दो मुख्य भागों में विभक्त था—शासक और शोषित, रक्षक और रक्षित। फलस्वरूप उस युग में भी सर्वाधिक संत्रस्त जीवन था नारी का और समाज में निम्न मानी जाने वाली जातियों का। अस्तु, जब विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में स्वतंत्र चेतना की भाव-लहरी गूँज उठी तो बहुसंख्यक शोषित जनता उस ओर तीव्र गति से आकर्षित हुई।

कालान्तर में यह भक्ति-मार्ग भी दो प्रमुख धाराओं में बँट गया—निर्गुण-भक्ति शाखा और सगुण-भक्ति शाखा। निर्गुण-भक्ति शाखा का नैराश्य भी स्त्री जीवन को अपने में न समा सका। सहजो बाई, दया बाई आदि कुछ कवयित्रियों ने निर्गुण रूप को अपनाया परन्तु जन-जीवन में उतना घुल नहीं सकी। उनका दर्शन साधारण नारी के हृदय की अन्तरंग भावनाओं को प्रस्फुटित नहीं कर सकता था।

सगुण-भक्ति-शाखा भी दो प्रशाखाओं में विभक्त हुईं। एक राम-भक्ति शाखा और दूसरी कृष्ण-भक्ति शाखा। राम-भक्ति शाखा में भी प्रताप कुँवरि बाई, तुलछराय आदि कवयित्रियाँ हुईं तथापि अधिकांश नारी-समाज को कृष्ण-भक्ति शाखा ने ही अधिक आकर्षित किया। मर्यादा और शील की दुहाई पर अत्यन्त संकुचित सीमाओं में आबद्ध नारी को राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप और विवशा सीता का करुण रूप अपने में उलझा न सका। जब कि कृष्ण की बाल-लीलाओं ने उसके मातृत्व को, किशोर और वयः प्राप्त युवक कृष्ण के अति मोहक रूप ने उसके स्त्रीत्व को सर्वथा आत्मसात कर लिया। साथ ही, अपने आराध्य में योगिराज तथा सर्वज्ञ की अनुभूति को पाकर उसका युग-युगान्तर से पद-दलित नारित्व

गौरवान्वित हो उठा और वह कृष्ण के रंग में रंगती गयी। यही कारण है कि सर्वाधिक कवयित्रियों की रचना कृष्ण-भक्ति शाखा के अन्तर्गत ही पाई जाती हैं। यहाँ तक कि इस शाखा में, मुसलमान कवयित्रियों की भी देन मिलती है। हिन्दू हों या मुसलमान, नारी-हृदय सर्वत्र एक है—उसके सुखदुःख, आशाएँ, आकांक्षाएँ, संघर्ष सब ही भावों में एक अभिन्नता है। मुसलमान नारी में भी वही स्त्रीत्व और मातृत्व हैं जो हिन्दू नारी में है, दोनों का नारीत्व अभेद्य हैं, अविच्छिन्न है। यदि तत्कालीन हिन्दू नारी संत्रस्त और शोषिता थी तो मुसलमान नारी की भी दशा कुछ अच्छी नहीं थी, वह भी उतनी आकुल-व्याकुल स्थिति में थी। मुस्लिम पुरुष शासक वर्ग था परन्तु मुस्लिम नारी तो हिन्दू नारी की तरह ही कठोर नियमों से आकंठ आबद्ध और उपेक्षिता थी। अतः कृष्ण-भक्ति में उसको भी वही गौरवमय सान्त्वना उपलब्ध हुई जो किसी भी हिन्दू नारी को हो सकती थी। कृष्ण-भक्ति की रसात्मिकता ने मुस्लिम पुरुष वर्ग को भी प्रभावित किया था। रसखान आदि ऐसे ही मुसलमान थे जो कृष्ण-रंग में रंग उठे थे। सम्भवतः इन्हीं भक्त कवि और कवयित्रियों के कारण किसी ने कहा था "ऐसे मुसलमान भक्त जनन पर कोटि हिन्दू वारिये"। कृष्ण-भक्ति में रंगी, स्निग्ध, प्रेमभरी ताज स्वयं ही "हिन्दुवाणी" कहलाने को अधीर हैं।

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी।
तुम हात ही बिकानी, मैं बदनामी भी सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी, मैं निवाज हूँ भुलानी।
तजे कलमा कुरान, सारे गुनन गहूँगी मैं।

स्यामला सलोना, सिरताज कुल्ले दिये।
तेरे नेह दाग़ में, निदाग ह्वै रहूँगी मैं।
नन्द के कुमार, कुरबान तोरी सूरत पै।
त्वाड़ नाल प्यारे, हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।

वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित भक्ति-मार्ग ने ही तत्कालीन नारी-समाज को कृष्ण-भक्ति की ओर विशेष रूपेण आकर्षित किया। वल्लभाचार्य जी द्वारा अनुमोदित धर्म में न तो नारी को साकार पाप, नर्क का द्वार और माया ही सिद्ध किया गया, न गृहस्थ जीवन की सीमाओं को ही छिन्न भिन्न किया। आराध्य कृष्ण घर के प्राणी बन नारी-जीवन से सहज ही स्नेह-सूत्र-बद्ध हो गये।

राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों पर छायी यह गहरी उथल-पुथल भी स्त्री-हृदय की अन्यतम कोमल भावनाओं पर कुठाराघात न कर सकीं, न हीं उनको परिवर्तित कर सकीं। दीपशिखा[1] सी जलती,

---

१ राजस्थानी लोकगीतो में एक शैली विशेष के गीत है जो "बधावा" कहलाते हैं। किसी शुभ कार्य की सम्पूर्णता पर ये गीत गाये जाते हैं। ऐसे ही एक गीत की कुछ पंक्तिया हैं:—

"म्हाँरा कँवर ज कुल का दिवला,
कुलबहू म्हाँरी दिवला री लोय।"

स्त्री कहती है, "मेरा पुत्र मेरे कुल का दीपक है परन्तु मेरी पुत्रवधू ही उस दीपक की दीपशिखा है"।

दीपशिखा दीपक का सौन्दर्य और जीवन दोनों हैं तो दीपशिखा का अस्तित्व ही वह स्नेह ओतप्रोत दीपक है। लोकगीतों में निखरा हुआ दाम्पत्य-जीवन का यह रूप अत्यन्त विशाल और मनोमुग्धकारी है।

अपने तईं स्नेहमय आधार को खोजती हुई भी वह जीवन की प्रेरणा बनी रही। उसकी अहर्निश तड़फती-जलती आत्मा को कृष्ण-भक्ति में वह स्नेह-सिक्त आधार मिला जिसने उसको अपने में आत्मलीन कर लिया।

भक्ति के इस रूप के अन्तर्गत जन्मोत्सव, बाल-लीला, युगल किशोर छवि, वंशी-वादन और तद्जनित अदम्य आकर्षण, गोपियों और राधा का कृष्ण-मिलन, मिलन जनित आनन्द, अभिसार और रास लीला, वियोग और तद्जनित वेदना, उपालम्भ आदि अनेक भावों का वर्णन स्त्री-हृदय के सहज प्रवृतियों के अधिक निकट पड़ा। विभिन्न परिसीमाओं में आकंठ अवरुद्ध उनके जीवन के अति स्वाभाविक सुखदुःख, भाव-अभाव, संघर्ष और कल्पना व आदर्शों को कृष्ण-भक्ति के व्याज से स्नेह और समर्पण युक्त गौरवमय प्रवाह मिला।

कला और साहित्यिकता से सर्वथा अपरिचित अन्तस्तल से निकले ये उद्गार देश और काल की सीमाओं को उलाँघ कर आज भी जन-जीवन की प्रेरणा और रस-सिक्त शान्ति बन कर जन-कंठहार बने हुए हैं। इन में से अधिकांश साहित्य श्रुत हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को उत्तराधिकार रूप में सहज ही प्राप्त होता रहा है।

ये उद्गार अधिकाँशतः मौखिक परम्परा से ही मिलते हैं। मुद्रण-यंत्रों का अभाव भी इसके लिये कुछ हद तक उत्तरदायी हैं अवश्य तथापि हमारा अधिकाँश प्राचीन धार्मिक साहित्य श्रुत ही है। इतने पर भी रीतिकालीन साहित्य हस्तलिखित ग्रंथों में प्राप्त हैं। राजाश्रय प्राप्त इन कवि और कवयित्रियों ने व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति हेतु काव्य-रचना की। वे आचार्य

कवि थे। येन केन प्रकारेण आश्रय-दाता को प्रसन्न रखना ही इनका सर्व प्रथम ध्येय था। राजाओं की विलास-प्रिय उच्छृंङ्खल प्रवृतियों के कारण दरबारों का वातावरण भी अत्यधिक विलास-प्रिय हो उठा था। अस्तु, स्त्री का बाह्य-सौन्दर्य, नखशिख वर्णन ही इन रीति-कालीन कवि और कवयित्रियों का प्रमुख विषय बन गया। राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का वर्णन इन के काव्य-निरूपण के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। यहाँ भी स्त्रियों ने भाग लिया। प्रवीणराय पातुर और शेख रंगरेजिन, रूपवती, बेगम आदि इस शाखा की कवयित्रियाँ हुईं। परन्तु इस प्रवृत्ति को बाह्य स्थिति और अन्तः चेतना दोनों ओर से ही समर्थन न मिल सका। सर्व प्रथम तो राजाओं और दरबारों की उच्छृंङ्खल विलास पूर्ण वातावरण कवयित्रियों के अनुकूल न पड़ा। फिर, नारी द्वारा ही नारी का नखशिख वर्णन रूचिकर न सिद्ध हो सका—"मोहहीं न नारी, नारी के रूपा।" प्रणय-जीवन के कोमलतम भावों की भरे दरबार में की गई यह मुक्त अभिव्यक्ति स्त्री के सहज संकोचशील प्रवृत्ति के सर्वथा विरूद्ध पड़ी। अस्तु, इस ओर साधारण नारी-समाज आकृष्ट न हो सका। तथापि शृंगारमय जीवन की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति में ही जीवन व्यतीत करने वाली नारियों ने इस में भाग लिया। इन में से कुछ की रचनाओं को देख यह तो निसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि इन कवयित्रियों द्वारा रचा गया काव्य पुरुषों द्वारा रचे गये काव्य से अनेक भावनाओं के सौष्ठव पल्लवन में कम समर्थ नहीं।

रीति-काल के शृंगारिक कवि राधा-कृष्ण का रस रूप में स्मरण कर जीवन की भौतिक आवश्यकताओं से निश्चिंत मात्र ही नहीं हो

जाते थे अपितु सहज ही मानवीय वैभव और विलास भी प्राप्त कर लेते थे। इनके काव्य का यह चमत्कार पूर्ण नखशिख वर्णन जन-जीवन का अंग न बन सका यद्यपि वह राजाश्रय पाकर दरबारों एवं दरबारियों के बीच फूला फला। राजदरबारों में पल्लवित हुआ यह साहित्य पण्डितों का वाणी-विलास बन कर पोथियों में और राज पुस्तकालयों में सुरक्षित रह गया।

इसके सर्वथा विपरीत भक्त कवियों के ये उद्‌गार किसी भी प्रकार के बाह्य आश्रय पर आश्रित नहीं रहे क्योंकि वे जनता-जनार्दन के हृदय में समा चुके थे। भक्तों के उद्‌गारों में प्राप्त सहज उपदेशों, सान्त्वनाओं और अपने जीवन के चित्रों को जनता ने सदैव अपने हृदय में ही रखा। आज भी हम देखते हैं कि गाँवों में कृषक हल चलाते हुए, बहुए चक्की पीसती हुई, पनिहारिन पानी भरती हुई और माँ अपने गोद की सन्तान को सुलाती हुई मधुर-स्वर से कुछ न कुछ गाती रहती हैं। छोटे से छोटे गृह-कार्य में व्यस्त माँ बहनें अपने वातावरण को मधुर गीतों से गुञ्जरित करती रहती हैं। अस्तु, इनको वही गीत प्रिय हो सकते हैं जो इनके दैनिक जीवन की सहज भावनाओं से सम्बन्धित हों—यहाँ भी स्त्रियों ने अपना साहित्य स्वयं ही सृजन कर लिया। आज के यंत्र-युग में भी इन लोकगीतों का महत्व अक्षुण्ण है। सुख-दुखः, अनुराग-विराग, उत्साह-नैराश्य आदि विभिन्न रंगों से रंजित गृहस्थ जीवन में संतो और भक्तों के छन्द अलंकार-हीन हार्दिक उद्‌गारों को भी वही स्थान मिला जो उनके अपने रचे हुए गीतों को मिला क्योंकि जनता के लिये ये उद्‌गार किसी संत या भक्त विशेष के नहीं थे अपितु

उनके अपने अन्तरंग जीवन के चित्र थे। अस्तु, जनता का कंठहार बन कर ये आज भी जीवित हैं।

यद्यपि राजस्थान का अन्तर ऐसी कई कवयित्रियों के संगीत से झंकृत है, तथापि कुछ स्वर अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण और ख्यातिपूर्ण स्वर है मीराँ का जिसने मेड़ता के संस्थापक परम वैष्णव राव दूदाजी की गोद में खेलते-खेलते ही कृष्ण-भक्ति की वह अदम्य प्रेरणा पाई जो मेवाड़ के वैभव और परम्परागत रूढ़ियों के बन्धन को तोड़ अपने आराध्य में विलीन हो भारत का गौरव बन गई। इनके उद्‌गार रूप में प्राप्त भजन साहित्यिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें भाव-गाम्भीर्य और भाषा-लालित्य दोनों ही प्रचुर मात्रा में हैं। मीराँ के भजन भी तुलसीकृत रामचरित्र मानस की तरह ही कवियों और संगतज्ञों, सर्वसाधारणों और महलों, झोपड़ों और मन्दिरों में समान रूप से सम्मानित हुआ।

राजस्थान में लगभग मीराँ की ही भाँति लोकप्रिय एक अन्य कवयित्री चन्द्रसखी भी हैं। राजस्थान के बाहर इनको वह महत्व और ख्याति प्राप्त नहीं जो मीराँ को प्राप्त है तथापि राजस्थान, ब्रजमंडल तथा उसके आस-पास के प्रदेशों में आज भी इनके पद जन-कंठहार बने हुए हैं। अतिशयोक्ति न होगी यदि कहा जाय कि इनके पद ही इनके अस्तित्व के सूचक हैं। यदि इनके पद इतने अधिक लोकप्रिय होकर देश और काल की सीमा के ऊपर उठकर जन-जीवन में घुलमिल नहीं जाते तो सम्भवतः आज इनके व्यक्तित्व का आभास भी आराध्य चरणों में ही सर्वथा विलुप्त हो गया होता। भक्त-गाथाओं और इतिहास के आधार पर मीराँ के

जीवन पर यत्किंचित प्रकाश तो पड़ता ही है; कम से कम, कुछ ऐसे सूत्र मिल जाते हैं जिनके कारण राजस्थान के इतिहास की अधिकाधिक खोज करने की प्रेरणा मिलती है परन्तु इन लोकप्रिय भजनों की रचयित्री चन्द्रसखी के जीवन-वृत्त के विषय में यत्किंचित ज्ञान संचयन का कहीं कोई सूत्र उपलब्ध नहीं। इनके पद ही वह एक मात्र सूत्र है जिनके आधार पर अनुमानित सत्य की पृष्ठभूमि पर इनके इहलौकिक जीवन के स्वरूप का ताना-बाना बुनना होगा। चन्द्रसखी के प्रायः सभी पदों में एक टेक है, "चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब" जो कि प्रकाश की क्षीणातिक्षीण रेखा है। इस टेक के आधार पर ही पदों की प्रामाणिकता और जीवन-वृत्त की गुत्थियां सुलझाने का प्रयास करना होगा।

वल्लभाचार्य के द्वारा प्रतिपादित पुष्टि-मार्ग के अन्तर्गत कृष्ण-भक्ति का विशेष प्रचार हुआ। पुष्टि-मार्ग का भी राजस्थान में विशेष प्रभाव रहा है, यह वार्ता-ग्रन्थों तथा इतिहास से प्रत्यक्ष है। अस्तु, कहा जा सकता है कि चन्द्रसखी का रचना काल विक्रम की १६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध रहा होगा। इस आधार पर इनका जीवन काल भी विक्रम की १६वीं शताब्दी ही सिद्ध होता है। जीवन-काल के इस अनुमान के सिवा इनके जीवन पर कुछ भी कहना अद्यावधि प्राप्त सामग्री के आधार पर सम्भव नहीं।

'राजस्थान भारती" पत्रिका के अप्रैल १६५० के अंक में "राजस्थान का एक लोकप्रिय संगीतकार चन्द्रसखी", लेख के अन्तर्गत श्री मनोहर शर्मा पृष्ठ २७ पर लिखते हैं, इन "चन्द्रसखी" नाम युक्त भजनों का प्रणेता कहां का रहने वाला, कौन था आदि बातें अज्ञात हैं। कहा

जाता है कि सखी-सम्प्रदाय के किसी कवि ने अपना उपनाम "चन्द्रसखी" रखकर भजन बनाये वे ही भजन चन्द्रसखी के भजन हैं।" आगे पृष्ठ २८ पर लिखते हैं:—राधा माधव की प्रणय लीलाओं में उनके साथ सखियाँ भी होती थीं—नायिका राधा की अन्तरंग भूत। उनके नाम भी रखे गये हैं—ललिता, तारावती, चन्द्रसखी आदि आदि मधुर और सरस। किसी कवि ने प्रेमाधिक्य में अपने को राधा जी की प्रिय सखी चन्द्रसखी समझा और यही नाम रख कर भजन बनाये। कहा जाता है कि वे ही भजन चन्द्रसखी के भजनों के नाम से लोगों के हृदय पर घर किए हुए हैं।" फिर, पृष्ठ ३६ पर लिखते हैं। "यद्यपि साहित्य संसार में मीराँ का जो आदर और महत्व है उसके सामने चन्द्रसखी कुछ भी नहीं पर राजस्थान में लोकप्रियता के नाते चन्द्रसखी का नाम मीरा से भी ज्यादा है। परन्तु साधारण जनता में एक विश्वास फैला हुआ है कि चन्द्रसखी के नाम से जो भजन हैं वे मीरा के ही बनाए हुए हैं। शायद इस का कारण यही है कि चन्द्रसखी के भजनों को रचनेवाले का नाम आदि विषय अज्ञात हैं। इसी कारण लोगों में यह झूठी धारणा फैल गयी है। परन्तु मीराँ के पदों में चन्द्रसखी के पदों की विचारधारा तो मिलती ही है, साथ ही साथ कई स्थानों पर शब्दावली भी विचित्र रूप से टकरा गई है।

श्री शास्त्री जी का यह कहना कि ये पद सखी सम्प्रदाय के किसी भक्त के रचे हुए हैं, मेरी विनम्र राय में युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता क्योंकि प्राप्त पदों के आधार पर ऐसा कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं जिस आधार पर यह कहा जा सके कि "किसी भक्त कवि ने ही प्रेमाधिक्य में अपने को राधाजी की प्रिय सखी चन्द्रसखी समझा और यही नाम

रखकर भजन बनाए।" सखी-सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में चन्द्रसखी का कहीं कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है जिस आधार पर इनको इस सम्प्रदाय विशेष का कहा जा सके।

श्री शास्त्री जी का यह कहना तो सर्वथा युक्तियुक्त है कि केवल पदों में पाये गये भाव-भाषा-साम्य के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रसखी और मीराँ का अस्तित्व ही एक है क्यों कि लोकगीत परम्परा से प्राप्त लोकप्रिय पदों में ऐसा सम्मिश्रण होना बहुत ही सहज है।

श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी एम. ए. विशारद, प्रोफेसर डूँगर कालेज बीकानेर, द्वारा संग्रहित और श्री ठाकुर रामसिंह एम. ए. द्वारा सम्पादित, "चन्द्रसखी रा भजन" नामक एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित हुई है। उस में श्री रामसिंह जी लिखते हैं, "चन्द्रसखी का बड़ा भारी महत्व संगीत-कार १ विशेषतः ठुमरी संगीत को इस समय तक जीवित रखने में कबीर, सूर, तुलसी और मीराँ तथा रामदास, तानसेन, बैजूबावरा आदि प्राचीन संगीतकारों एवं चतुर कुँवर श्याम, रंगीले मुहम्मद, अख्तर पिया आदि उत्तर कालीन संगीतकारों के साथ साथ चन्द्रसखी का भी बड़ा भारी हाथ है। आज भी, क्या छोटे क्या बड़े सभी प्रकार के संगीतज्ञों और गवैयों में चन्द्रसखी के भजनों का आदर है। साधारण जनता विशेषतः स्त्री समाज में इन भजनों का बड़ा प्रचार है। चन्द्रसखी के नाम का जादू ऐसा है कि सुनने वाला मंत्रवत मुग्ध हुए बिना रही नहीं सकता।" उपर्युक्त आधार पर भी समय का निर्धारण सम्भव नहीं।

अपनी पुस्तक, "मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ" में पृष्ठ २०६ पर

सुश्री डॉ० सावित्री सिन्हा लिखती हैं, "चन्द्रसखी के समय, जीवन, रचना-काल, मृत्यु आदि के विषय में प्राप्त करने का कुछ भी साधन नहीं है। उनके भजनों को साहित्यिक काव्य की अपेक्षा लोकगीतों के अन्तर्गत रखना अधिक उपयुक्त होगा।"

इन संत और भक्त कवियों तथा कवयित्रियों के जीवन की भौतिक सीमाएँ गम्भीरतम अनुभूतियों की सरलतम अभिव्यक्तियों के सूक्ष्म रूप से जन-जीवन में घुलमिल कर एकप्राण हो उठीं। अस्तु, जनता द्वारा यत्किंचित सुरक्षित पदों में ही इन का परिचय प्राप्त हो पाता है।

लोकगीत-परम्परा में सुरक्षित इन गीतों पर लोक-प्रियता के कारण समय का प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है। अस्तु, इन गीतों में गहरे परिवर्तन हुए हैं। कोई ऐसा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंन्थ भी उपलब्ध नहीं जिस की कसौटी पर प्राप्त पदों की प्रामाणिकता का सुनिश्चित निर्णय किया जा सके।

"बृहद्राग-रत्नाकर", "रास पद संग्रह", "भक्त चिंतामणी" आदि कुछ ऐसे ग्रन्थ है जिन में विभिन्न भक्त कवियों के पदों का संग्रह हुआ है। इन्हीं में बीच बीच में चन्द्रसखी के भी कुछ पद मिल जाते हैं। श्री ठाकुर रामसिंह जी द्वारा सम्पादित "चन्द्रसखी रा भजन" ही एक ऐसी पुस्तक है जिस में केवल चन्द्रसखी के भजनों का संग्रह करने का प्रयास किया गया है। इन भजनों की प्रामाणिकता के विषय में राजस्थान भारती में पृष्ठ ३६ पर श्री शास्त्री जी लिखते हैं, "चन्द्रसखी के भजनों में एक बात ज्यादह ध्यान देने योग्य है। इन भजनों को भिन्न भिन्न स्थान के निवासी अपनी अपनी बोली के सांचे में ढाल कर उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार से गाते हैं।

इस प्रकार चन्द्रसखी के एक ही भजन के कई रूप भी पाये जाते हैं। साधारण हेरफेर तो प्रायः सभी पदों में मिल जायेगा। परन्तु कई भजनो में तो बहुत ही अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार इन जनता के गीतों का पाठ क्या होना चाहिए यह एक अत्यन्त कठिन समस्या है। इनके किस रूप को स्वीकार किया जाय और किस रूप को अस्वीकार किया जाय यह साधारण प्रश्न नहीं हैं। इन जनता के भजनों का किस 'पुरानी पोथी' के अनुसार सम्पादन किया जाय कि यह गम्भीर समस्या हल हो सके।"

प्राप्त पदों का विश्लेषण करने पर श्री शास्त्रीजी के कथन की गम्भीरता स्पष्ट हो जाती है। कुछ ऐसे ही प्राचीन राजस्थानी कवियों के ग्रन्थों के सम्पादन का जो प्रयत्न महान पंडितों द्वारा हुआ वह भी अद्यावधि विद्वानों द्वारा ही प्रामाणिक नहीं माना जा सका जब कि उन कवियों की रचनाएं वर्षों पूर्व भी लिपि बद्ध की गई थीं। चन्द्रसखी के पदों का कोई लिपिबद्ध प्राचीन संग्रह तो दूर की बात है जब कि कोई आधुनिक संग्रह भी प्राप्त नहीं होता।

सर्वाधिक आश्चर्य तो यह हैं कि मीराँ और चन्द्रसखी के पदों में इतना गहरा सम्मिश्रण हुआ है जैसा कि किसी अन्य भक्त कवि या कवयित्री के पदों में नहीं हुआ। सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता हैं कि दोनों के ही काव्य का विषय कृष्ण-भक्ति रही है और दोनों ही विशेष रूपेण लोकप्रिय हुई हैं। कहीं-कहीं तो शब्दावली इतनी हूबहू एक हैं कि कौन द किस का हैं यह कहना दुरूह हो उठता है। उदाहरणार्थः—

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलकत कान ।

चन्द्रसखी

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल की झकझोर ।

× × × मीराँ

दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल करत किलोला रे ।

चन्द्रसखी

दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल सबद सुणाई ।

× × × मीराँ

जमुना के नीरे तीरे धेन चरावे, मधरी सी वेण बजाय के ।

चन्द्रसखी

जमना के नीरे तीरे धेन चरावे, बंसी में गावे मीठी वाणी ।

× × × मीराँ

दिन नहीं चैन रैन नहीं निदरा, अन्त बिरह की पीर ।

चन्द्रसखी

दिन नहीं भूख रैन नहीं निदरा, यूँ तन पल पल छीजै हो ।

× × × मीराँ

इनके अतिरिक्त, अपने भाव में विभोर साधारण जनता इस बात का ध्यान नहीं रखती कि पद विशेष किस विशेष कवयित्री का है। उसको भजन के भाव से मतलब है, पद चाहे चन्द्रसखी का हो, चाहे मीराँ का, चाहे किसी और का। इस तरह हम देखते हैं कि कई पद चन्द्रसखी और मीराँ दोनों के ही नाम पर प्रचलित हैं।

उदाहरणार्थः—

कैसे ब्याहूं राधे कन्हैया तोरो कारो ।
घर घर री वो गऊ चरावै, ओढ़णी कंबल कारो ।
छीन झपट दधि खात बिरज में, चलैगो कैसे राधे को गुजारो ।
मोरी राधा अजब सुन्दरी, तेरो कन्हैयो कारो ।
कारो कारो मत करो, कान्हों है बिरज को उजियारो ।
नाग नाथ रेती पर डार्यो रे, मारी फूंक कृष्ण भयो कारो ।
पीताम्बर की कछनी काछे, मोहन बंशी वारो ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, कान्हा मिलो त्रिलोकी सूं न्यारो ।

मीराँ के नाम पर भी ऐसा ही एक पद प्रचलित है ।

तेरो कान्ह कालो हो माई, मोरी राधे गोरी हो ।
ऐसी राधे रूप बनी, कंचन सीं देह वनी हो ।
ऐसो कारो कान्ह पर, कोटि राधा वारी हो ।
गोकुल उजार कीन्हों, मथुरा बसाय लीनी ।
कुब्जा को राज दीनों, राधे को विसारी हो ।
बिनती सुनो ब्रजराज, लागूंगी तुम्हारे पाय हो ।
मीराँ प्रभु सो कहियो जाय, सेवक तुम्हारी हो ।

(पृ० २०६ पद १)

× × ×

बता दे रे सखी, सांवरा को डेरो कित्तीं दूर ।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, जमुना बहत भरपूर ।

इत मथुरा की मस्त ग्वालिन, मुख पर बरसत नूर।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, सांवरे से मिलनो जरूर।
यही पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है।

बता दे सखी सांवरिया को, डेरो किती दूर।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहे यमुना पूर।
मथुरा जी की मस्त गुवालिनी, मुख पर बरसे नूर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सांवरे से मिलना जरूर।

(पृष्ठ १५७, पद ३)

× × ×

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।
आसन मार गुफा माहि बैठ्यो, याही भजन की रीत।
असल चन्दन की धूनी रमाय, रंगमहल के बीच।
पाट पाटम्बर की झोली सिमाद्यूं, रेशम तनिया बीच।
मैं तो जाणे थी जोगी संग चलेगा, छांड़ि गया अधबीच।

कुछ परिवर्तनों के साथ यही पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है—
कोई दिन याद करोगे, रमता राम अतीत।

आसण माँडि अडिग होय बैठ्या, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणू जोगी संग चलेगा, छांडि गया अधबीच।
आत न दीसै, जात न दीसै, जोगी किस का मीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवै चीत।

× × ×

मिलता जाज्यो (जी अभिमानी), थांरी सूरत देख लुभानी।
ह्याँरो नाव थे जाणो (ही छो), (म्हें छां) राम दीवानी।
आमी सामी पोल नन्द की, चन्दन चौक निसानी।
थे म्हाँरे आवो बंशीवारा, करस्याँ बहुत लडानी।
कराँ रसोई (साज के) थाँरी, बहुत (कराँ) मिजमानी।
थे आवो हरि धेनु चरावण, म्हें जल जमुना पानी।
थे नन्द जी का लाल कुहाओ, म्हें (गोकुल) मस्तानी।
जमुना जी के नीराँ तीराँ, थे (रह्यो) धेनु चराज्यो।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, नित बरसाणे आज्यो।

निम्नलिखित पाठभेद भी मिलता है:—

मिलता जाज्यो राज गुमानी, थाँरी सूरत देख लुभानी।
म्हाँरो नाव थे बूझो मैं छूं राम दिधानी।
आमी सामी पोल नन्द के, चन्दन चोक निसानी।
थे म्हाँरे घर आवो बंसीवारा, करस्यां बहुत लडानी।
कराँ रसोई सोद की, थांरी बहुत करूं मिजमानी।
थे आवो हरि धेणु चरावण, जल जमुना पानी।
थे नन्द जी को लाल कुहावो, म्हें गोपी मस्तानी।
जमुना जी के नीराँ तीराँ, थे हरी धेनु चराज्यो।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, नित बरसाणे आज्यो।

ऐसा ही एक पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है:—

मिलता जाज्यो हो गुरु ज्ञानी, थांरी सूरत देखि लुभानी।
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूं बिरह दिवानी।

रात दिवस कल नाहीं परत है, जैसे मीन बिनु पानी।
दरस बिना मोहे कछु न सुहावै, तलफ तलफ मरजानी।
मीराँ तो चरणन की चेरी, सुन लीजै सुखदानी।

ऐसे कितने ही पद जो लगभग एक ही रुप में मीराँ और चन्द्रसखी दोनों के नाम पर प्रचलित हैं। साथ ही, नीलाम्बर, सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों के पद भी चन्द्रसखी के नाम पर चल पड़े हैं। उदाहरणार्थः—

लट उलझी सुरझा जा, मोहन मेरे कर मेंहदी लगी है।
माथे की बिंदिया गिरी रे पलंग पर, अपने हाथ लगा जा।
गले का हार मोरा टूट गया है, अपणे हाथ पहना जा।
सिर की चुनरिया सरक गई है, अपणे हाथ उढ़ा जा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, अपणी सूरत दिखा जा।

मेरे कर मेंहदी लगी री, लट उलझी सुर्झाय जा।
शिर की सारी सरक गई है, अपने हाथ उढ़ाय जा।
भाल की बेंदी मेरी गिर जो परी है, हा हा करत लगाय जा।
नीलाम्बर प्रभु गुण ना भूलूं, बीरी नेक खवाय जा।

× × ×

कहन लगे मोहन मैया मैया।
मथुरा मे होय बालक जन्मै, घर घर बजत बधैया।
नन्द महर जी को बाबा, अरु बलदाऊ को भैया।
दूर खेलन मत जाओ मेरे ललना, मारेगी काऊ की गैया।
सिंह पोल पर ठाढ़ी जसोदा, घर आवो दोनो भैया।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, जसुमति लेति बलैया।

कहन लगे मोहन मैया मैया।

पिता नंद सो बाबा, अरु हलधर सो भैया।

ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहत यशोदा, ले ले नाम कन्हैया।

दूरि कहूं जिनि जाहु ललना, रे मारेगी काहू की गैया।

गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर घर लेत बलैया।

मनि खंभन प्रतिबिम्ब बिलोकत, नचत कुंवर निज पैया।

नंद जसोदा जी के उर ते, इह छवि अनत न जइया।

सूरदास प्रभु तुमरे दरसन को, चरनन की बलि गइया।

× × ×

तीसरी एक उलझन यह भी है कि एक ही पद विभिन्न रूपों में भी प्राप्त होते हैं।

उदाहरणार्थः—

नाचैं नंदलाल, नचावै वाकी मैया।

रुमक झूमक पांय नेवर बाजे, ठुमक ठुमक पांव धरत कन्हैया।

दूध न पीवै कान्हो दहीय न खावे, माखण मिसरी का बड़ खवैया।

पाट पटम्बर कान्ह ओढ़ न जाणे, काली कमली का बड़ा ओढ़ैया।

विन्द्रावन में रास रच्यो है, सहस गोपी मे नाचै एक कन्हैया।

चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल की मैं लेवूं बलैया।

पाठान्तरः—

नाचैं नन्दलाल नचावै वाकी मैया।

मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में पग धारो री कन्हैया।

रुमक झूमक पग नूपुर बाजै, ठुमक ठुमक पग धारो री कन्हैया।

दूध न पीवै ललना दहिया न खावै, माखन को लाला बड़ो री खवैया।
शाल दुशाला मनहूं न भावै, कारी कामरी लाला बड़ो री ओढ़ैया।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, बंशी को लाला बड़ो री बजैया।
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में, सहस गोपी इक भयो री कन्हैया।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल की लेऊँ बलैया।

× × ×

श्याम की बंसी बन पाई।
उठो री मैया खोलों नीं किवाड़ी, मैं बंसी घर देन कूं आई।
बहुत दिनों के उनींदे मोहन, सोने दे बिरखभान दुलाई।
इतनी सुन के जागे मोहन, बंशी के संग मेरी पूंची चुराई।
सुणी नैन नहीं देखी, चलो तो देऊं ठोढ़ बताई।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दोनूं पढ़े एक ही चतुराई।

पाठान्तरः—

स्याम की बंसी बन पाई।
उठो री जसोदा मैया, खोली री किवाड़ी।
मैं बंसी घर देवन कुं आई।
बहुत दिनन से सोये री मोहन, सोवन दे वृषभानु की जायी।
इतनी सी सुण के निकस आये मोहन, बंसी के साथ मोरी पोथी चुराई।
मैं तो जाणे थी मेरो मान बधेगो, उल्टी श्याम मेरे चोरी लगायी।
बिन दुलड़ी बंसी न देवूं, हम से श्याम छोड़ो चतुराई।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणों में चित्त लगाई।

उपर्युक्त पद की छठीं पंक्ति में "हमसे" के बदले "हटो" प्रयोग भी मिलता है।

ऐ री माँ, बंसीवारो कान्ह ।
चन्द्रबदन मृगलोचन राधे, मोह्यो श्याम सुजान ।
गढ़ मथुरा की गुजरी, गढ़ गोकुल को कान्ह ।
अधबीच झगड़ा माँडियो, सरे मांगे दही को दान ।
कब के तुम दानी भये, कब हम देती दान ।
बाबा नन्द को धेनु चरावे, देख्यों अनोखो कान्ह ।
मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, कुण्डल झिलके कान ।
अधबीच झगड़ा रोप दियो, मांगे दधि को दान ।
कब के दानी भये हो कान्हां, कब हम दीन्हो दान ।
नंद मंहर घर धेनु चरावे, सुण्यो अनोखो कान ।
मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, कुण्डल झिलके कान ।
मुख पर मुरली अधिक बिराजे, केसर तिलक लुभान ।
सुर नर मुनि ज्याको ध्यान धरत है, गावत वेद पुराण ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दरशण दीज्यो आण ।

पाठान्तर:—

ए री माँ, बंसीवारो कान्ह ।
चन्द्र बदन मृगलोचन राधे, मोह्यो श्याम सुजान ।
गढ़ मथुरा की गुजरी, गढ़ गोकुल को कान्ह ।
अधबीच झगड़ा मांडियो, सरे मांगे दही को दान ।
कब के तुम दानी भये, कब हम देती दान ।

बाबा नन्द को धेनु चरावे, देख्यो अनोखो कान्ह ।
मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, कुण्डल झलके कान ।
मुखड़े पर मुरली सोहै, केसर तिलक लुभान ।
जमुना के नीरे तीरे रास रच्यो है, बंसी में सुरग्यान ।
बंशी बजा मेरो मन हर लियो, मार विरह को बान ।
सुर नर मुनि जन ध्यान धरत है, गावत वेद पुरान ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणां मेरो ध्यान ।

उपर्युक्त सभी उलझनों में किसी भी प्रामाणिक सूत्र के सर्वथा अभाव में इन पदों की प्रामाणिकता-निर्णय का एक हलका सा प्रयास किया जा सकता है यद्यपि वह भी अपूर्ण ही रहेगा। प्राप्त पदों को उनकी अभिव्यक्ति के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभक्त कर उनका विश्लेषण करने पर कुछ पद तो सर्वथा निश्चित् रूप से छूँट जायेंगे। शेष पदों की प्रामाणिकता निर्णय के लिये और भी सामग्री अपेक्षित होगी।

प्राप्त पदों को प्रमुखतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक वह जिनमें स्तुति और बाल-लीलाओं का वर्णन हुआ है। ऐसे पदों की संख्या भी कम है। ऐसे अधिकांश पद एक ही रूप में मिलते हैं। इनकी भाषा भी ब्रजभाषा से विशेष रूपेण प्रभावित दीखती है। ऐसे पदों को भी तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. वन्दना।

२. निर्वेद।

३. बाल-लीला।

"वन्दना" के अन्तर्गत सात पद प्राप्त हैं। इनमें कृष्ण की विभिन्न

लीलाओं के व्याज से उनके सच्चिदानन्द स्वरूप की ही स्तुति की गई है। इन सातों पदों में से किसी पद में भी पाठभेद नहीं मिलता।

"निर्वेद" के अन्तर्गत कुल तीन पद मिलते हैं। ऐसे पदों में भौतिक जगत् की निःसारता में एक मात्र हरिनाम-आधार की महिमा प्रकट की गई है। इसमें एक पद "चार वरण में सोई बड़ा जिन राम राम रटा रटा" का पाठ भेद भी प्राप्त है। तथापि लोकगीत परम्परा से प्राप्त पदों में ऐसे हल्के परिवर्तनों का मिलना ही अत्यन्त स्वाभाविक है। एक पद "करमन की गति न्यारी, मै किस विध लिखूँ मुरारी" मीराँ के नाम पर भी यत्किंचित परिवर्तन के साथ प्राप्त है। ऐसे पदों में कौन पद किसका है यह कहना तो असम्भव ही है।

"बाल-लीला" के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनमें कृष्ण-जन्म के शुभावसर पर होने वाले आनन्द-मंगल तथा विभिन्न बाल-लीलाओं का वर्णन है। कृष्ण के सच्चिदान्द स्वरूप के साथ ही वात्सल्य-वर्णन भी इन पदों की विशेषता है। ऐसे तेरह पद प्राप्त हैं। इन पदों में कुछ अर्थ-हीन हैं तो कुछ में पूर्वापर संबन्ध का निर्वाह ही नहीं हुआ हैं। ऐसे पदों को कीर्तन-मण्डली की देन मानना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। इन में एक पद सूरदास के पद "कहन लगै मोहन मैया मैया" का ही गेय रूपान्तर भर प्रतीत होता है। इनकी भाषा ब्रजभाषा से ही विशेष प्रभावित है। बाल-लीला वर्णन के अन्तर्गत एक ही पद ऐसा है जिसकी भाषा लगभग शुद्ध राजस्थानी कही जा सकती है।

अब वे पद आते हैं जिन में कृष्ण के प्रति प्रेम-जनित विभिन्न

भावनाओं का ही वर्णन हुआ है। राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन वह चाहे जिस व्याज से हुआ हो स्त्री-हृदय की कोमल भावनाओं को अधिक प्रभावित कर सका फलतः ऐसे पद विशेष लोकप्रिय हुए। अस्तु, ऐसे पदों की ही संख्या सर्वाधिक है। इन में प्रायः पदों में पाठ-भेद मिलते हैं। इतना ही नहीं, इनमें अधिकांशतः मीरां और कहीं कहीं अन्य कवियों के पदों का भी सम्मिश्रण हुआ है। इनके पदों की भाषा राजस्थानी से कुछ विशेष प्रभावित है। इस श्रेणी के पदों में इतने अधिक हेरफेर का कारण सम्भवतः इनकी मधुर-भावाभिव्यक्ति ही है। ऐसे पदों को भी चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१—राधा-वर्णन।

२—वंशी-वर्णन।

३—प्रेम-माधुरी।

४—वियोग।

"राधा-वर्णन" के अन्तर्गत तेरह पद हैं। इसमें अधिकांश पदों में अर्थ-संगति नहीं है। "कैसे ब्याहूँ राधे-कन्हैयो तेरो कारो।" कुछ हेर फेर के साथ मीरां के नाम पर भी प्रचलित है। अर्थ और पूर्वापर संबन्ध से हीन इन अधिकांश पदों की प्रामाणिकता में संदेह अवश्य ही होता है। इन पदों की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव बहुत कम है।

"बाँसुरी-वर्णन" के अन्तर्गत भी तेरह ही पद मिलते हैं। इनमें किसी पद की भाषा विशेष रूपेण राजस्थानी है तो किसी की लगभग शुद्ध ब्रजभाषा है। वंशी-ध्वनि के मोहक प्रभाव का वर्णन इन पदों का प्रमुख वर्ण्य-विषय है। ऐसे पदों में पाठ-भेद अधिक मिलता

है। इन पदों में "श्री राधे रानी दे डारो ना बाँसुरी मोरी" कुछ परिवर्तनों के साथ मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है। चन्द्रसखी के उपर्युक्त पद से गहरा साम्य रखता हुआ एक पद "बाँसुरी तू कवन गुमान भरी" मीराँ और सूरदास के नाम से भी प्राप्त है। इन पदों की समानता और पाठ भेदों के आधार पर सहसा ही इनके एक दूसरे के गेय-रूपान्तर होने का भ्रम हो जाता है। सभी पहलूओं पर विचार करते यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि भक्तजनों ने अपनी भावनानुसार सूरदास के पद को ही भिन्न भिन्न रंगों में रंग दिया है। इनका एक पद "मैं तो बंशी की टेर सुनूँगी, सुनूँगी" तो भाव-भाषा के आधार पर निश्चित रूपेण ही प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

"प्रेम-माधुरी" के अन्तर्गत सर्वाधिक पद प्राप्त हैं। ऐसे उनतालीस पद हैं। इन में कई पद मीराँ के नाम पर भी कुछ परिवर्तनों के साथ प्रचलित हैं। एक पद (सं० २७) "सहेली जमुना तट कुण खड़ी" मीराँ के संघर्षाभिव्यक्ति का एक पद "इण सरवरिया री पाल मीराँ बाई साँपड़े"[१] के बीच की तीन चार पंक्तियों से बहुत गहरा साम्य रखता है।

---

[१]इण सरवरिया री पाल, मीरां बाई सांपड़े।
सांपड़ किया असनान, सूरज सामी जप करे।
होय विरंगी नार, डगराँ बीच क्यूँ खड़ी ?
कांई थांरो पीहर दूर, घराँ सासू लड़ी ?
चल्यो जा रे असल गुवांर, तन्ने मेरी के पड़ी।
गुरु म्हांरा दीनदयाल, हीरां रा पारखी।
दियो म्हांने ज्ञान बताय, संगत कर साध री।
खोई कुल की लाज, मुकुन्द थांरे कारणे।
वेग ही लीज्यो सम्हाल, मीराँ पड़ी बारणे।

बहुत सम्भव है कि ये ही कुछ पंक्तिया चन्द्रसखी के नाम से स्वतंत्र रूप में प्रचलित हो गई हों। एक पद "लट उरझी सुरझा जा" (सं० २३) नीलाम्बर कवि के पद का ही गेय रूपान्तर सा प्रतीत होता है। इन पदों में एक अपनी विशेषता भी है। विभिन्न पदों की विभिन्न पंक्तियाँ कुछ न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ स्वतंत्र पद के रूप में भी चल पड़ी हैं। पद सं० १ और २; ३, ४ और ५ तथा ७, ८, ६, और १० ऐसे पदों का सुन्दर उदाहरण है। साथ ही, कुछ पद ऐसे भी हैं जो अर्थ हीन हैं, कुछ ऐसे भी हैं जिन में पूर्वापर संबन्ध का निर्वाह ही नहीं हुआ है।

"वियोग-वेदना" को अभिव्यक्त करने वाले अधिकांश पदों में मीराँ के पदों का सम्मिश्रण हुआ है। ऐसे पद सत्ताईस हैं। चन्द्रसखी के पदों में इन्हीं पदों की भाषा राजस्थानी से सर्वाधिक प्रभावित हैं।

इनमें छः पद अति साधारण परिवर्तन के साथ मीराँ के नाम पर भी प्रचलित हैं, शेष पदों में कुछ तो अर्थ-हीन हैं और कुछ में पूर्वापर संबन्ध का निर्वाह नहीं हुआ है। कुछ पदों से ऐसा भी आभासित होता है कि विभिन्न पदों की पंक्तियाँ जुड़ कर ही एक स्वतंत्र पद के रूप में प्रचलित हो गई हैं।

इन पदों में दो तीन पद ऐसे भी मिलते है जिन में चन्द्रसखी और ललिता सखी दोनों का ही एक साथ वर्णन हुआ है। ऐसे पदों की प्रामाणिकता विशेष रूप से संदिग्ध है।

इस वर्ग के पदों में सर्वाधिक विचारणीय पहलू है इन की भाषा पर राजस्थानी का वह गहरा प्रभाव जो चन्द्रसखी के नाम पर प्राप्त अधिकांश

अन्य पदों में नहीं है। प्रेम-माधुरी के कुछ पदों पर राजस्थानी का प्रभाव तुलनात्मक दृष्टिकोण से अन्य पदों की अपेक्षा अधिक है परन्तु इन पदों की भाषा ब्रज के अपेक्षा राजस्थानी के ही अधिक निकट पड़ती हैं।

प्रेम-माधुरी और वियोग के अन्तर्गत आने वाले पदों का एक और विचारणीय पहलू है। "चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब" जैसी टेक के साथ इन पदों में व्यक्त अनुभूतियों का सामाञ्जस्य नहीं होता। इन पदों से व्यक्त मिलन और वियोग की भावनाओं की अभिव्यक्ति किसी बालक के प्रति की गई हो ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत होता। इन पदाभिव्यक्तियों के आधार पर पूर्ण सौन्दर्यवान युवक कृष्ण का ही चित्र प्रत्यक्ष हो उठता है।

उपर्युक्त सभी पहलूओं पर विचार करने पर प्राप्त पदों में प्रामाणिक पदो की संख्या बहुत छोटी ही प्रतीत होती है।

इन्हीं कुछ पदों से चन्द्रसखी के पदो का सौन्दर्य स्पष्ट हो जाता है।

उदाहरणार्थः—

मंगल आरति नन्दकुंवर की, यशुमति की राधावर की।
मंगल जन्म कर्म कुल मंगल, मंगल यशुमति माखन चोर की।
मंगल मोर मुकुट कुण्डल छवि, मंगल मुरली बजे घनघोर की।
मंगल ब्रजवासी सब मंगल, मंगल गान करैं चहुँ ओर की।
मंगल गोपी ग्वाल सब मंगल, मंगल राधा नन्दकिशोर की।
मंगल नन्द यशोदा मंगल, मंगल सुतहिं खिलावैं गोद की।
मंगल गिरि गोवर्धन मंगल, मंगल वृन्दावन किशोर की।

मंगल कुञ्जवासी सब मंगल, मंगल शोभा है चहुँओर की।
मंगल श्याम जमुन जल मंगल, मंगल धार बहे अघहर की।
मंगल श्री हलधर सब मंगल, मंगल राधा जुगलकिशोर की।
मंगल या मूरति मन मोहै, चन्द्रसखी बलि जाऊँ चरण की।

उपर्युक्त पद में न तो कोई साहित्यिक चमत्कार है न कोई भाव-गाम्भीर्य विशेष ही है। एक गृहस्थ के घर में चिरवांछित पुत्र-जन्म के अवसर पर वातावरण कितना आल्हादमय हो जाता है इसका एक अत्यन्त सरल अपितु स्पष्ट वर्णन है। कृष्ण के सच्चिदानन्द स्वरूप को भी नहीं भुलाया जा सकता तो वह बरबस लादा भी नहीं जाता। पदाभिव्यक्ति से घर में छाया मंगल ही मूर्तिमान हो उठता है।

बाजे बाजै लाल तेरी पैंजनियां हो रून झुनिया।
पैंजनियां जै अधिक सुहावै, मोहि लिये सुर नर मुनियां।
नील अंग पीत झंगुलिया, रत्न जड़ाव की पैंजनियां।
चन्दन चर्चित अंग मनोहर, सिर पर सोहत चौतनियां।
यशुमति सुत को चलन सिखावै, अंगुली पकरि लिये दोउ जनियां।
छोटे छोटे चरण चतुर्भुज मूरति, अलक झलक रही नागिनियां।
शिव ब्रह्मा जाको पार न पावैं, ताहि नचावैं ग्वालिनियां।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तीन लोक के तुम धनियां।

वात्सल्य का कितना मनोमुग्धकारी चित्र है। अपनी सन्तान के प्रेम में विभोर माँ, चतुर्भुज भगवान बाल-कृष्ण का श्रृंगार करती हुई उसको भी चलना सिखा रही है।

"शिव ब्रह्मा जाको पार न पावै, ताहि नचावैं ग्वालिनियाँ।" पढ़ते-पढ़ते रसखान की स्मृति आने लगती है।

सेस महेस गनेस दिनेस,
सुरेसहुँ जाहिं निरन्तर गावैं।
जाहिं अनादि अनंत अखंड,
अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक व्यास रटैं,
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

(ब्रज-माधुरी सार पृष्ठ २१२ पद ५)

रसखान की भाषा में जो माधुर्यपूर्ण चमत्कार है वह चन्द्रसखी में नहीं। रसखान की तरह चन्द्रसखी अपने बाल-कृष्ण के सच्चिदानन्द रूप का वर्णन नहीं करती, वह तो अपनी नित्य व्यवहृत भाषा में ही कह देती है, "शिव ब्रह्मादिक जाको पार न पावै, ताहिं नचावैं ग्वालिनियाँ।" उसका स्त्री-हृदय अपने आराध्य की महानता की अनुभूति से आल्हादित है, वह उस महानता का भाष्य करना नहीं चाहती। रसखान की तरह वह "अहीर की छोहरियाँ" का वर्णन नहीं करती अपितु "नाच नचाने वाली ग्वालिनियाँ" में एकाकार हो जाती है। सगुण भक्ति की यह आत्मसात कर लेने वाली शक्ति ही तत्कालीन संत्रस्त्र जनता का सम्बल बन सकी।

नन्दलाल दही मेरो खाय गयो री ।
कछु खायो कछु वै ढरकायो, ग्वालन हाथ लुटाय गयो री ।
लाख कही मोरी एक न मानी, मन चाही बात बनाय गयो री ।
तोड़ फोड़ सब दयी मटुकियां, जोरी कर धमकाय गयो री ।
जाय कहूं जसोदा के आगे, तेरो लाल इतराय गयो री ।
साँवरी सूरत, माधुरी मूरत, जो मन भाय समाय गयो री ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, आवागमन मिटाय गयो री ।

पदाभिव्यक्ति से एक होनहार बालक का चित्र उपस्थित होता है। "पूत के पग पालने" के अनुसार बालक की बाल-सुलभ लीलाओं में ही उसका भविष्य स्पष्ट हो जाता है। "मन चाही बात बनाय गयो री", "जोरी कर धमकाय गयो री", "जो मन भाय समाय गयो री", के साथ ही साथ "आवागमन मिटाय गयो री" जैसी अनुभूति भी बनी हुई है। बालक की चपलता में गोपियों की खिजलाहट भी मुसकान में परिवर्तित हो जाती है। बाल-सुलभ चपलता और गोपियों के स्नेहसिक्त हृदय का बड़ा ही सजीव वर्णन हुआ है।

भोर ही बाजी मुरलिया, कैसे धरूँ जिय धीर ।
गोकुल बाजी, वृन्दावन बाजी, बाजी बाजी जमुना के तीर ।
मैं जल जमुना भरन जात री, भरण नहीं दे मोहे नीर ।
बैठ कदम पर बंसी बजाहिं, बंसरी को लग्यो मोरे तीर ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, आखर जात अहीर ।

वंशी की मोहनी-ध्वनि सुनकर ग्वालिनी विवश हो उठी है। अपने सहज दैनिक कर्तव्यों को करते हुए उसने वंशी की टेर सुनी। उसको

"बंसरी को लाग्यो तीर;" उसको न गुरू की आवश्यकता है, न "त्रिकुटी महल" में विचरने की, न माला-मुद्रा धारण कर घर घर अलख जगाने की। उसने बंशी की मनमोहक ध्वनि केवल सुनी ही नहीं है अपितु उससे घायल भी हुई है। अतः वह उसको भ्रम नहीं मान सकती। वह निश्चित रूप से जानती है कि यह उसके आराध्य की वंशी-ध्वनि है जो उसको बरबस अपने में खेंचें ले रही है और खीज कर वह कह उठती है "आखर जात अहीर।"

आखिर तो "जात अहीर" ठहरा, समय के औचित्य का निर्णय क्योंकर कर सकता था!

मीराँ भी ऐसा ही उपालम्भ देती है।

समस्त वैष्णव-साहित्य में और कहीं भी ऐसी अभिव्यक्ति नहीं मिलती। रसखान भी "ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पर नाच नचावैं।" कहकर ही चुप हो जाते हैं क्योंकि वे कृष्ण के उस सच्चिदानन्द रूप के प्रति जो "सेस महेस गनेस दिनेस, सुरेसहूं जाहिं निरन्तर गावैं" सदा जागरूक हैं। परन्तु "अहीर की छोहरियाँ" अपने प्रेम में तन्मय अपने आराध्य प्रियतम को अपने से विभिन्न देख ही नहीं पाती। अतः निःसंकोच कह उठती है "आखर जात अहीर।" इस तानाकशी में ही उनका तन्मय-प्रेम बरबस झाँक उठता है। क्या आश्चर्य जो रसखान गा उठे, "मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।"

श्याम की बंसी बन पाई ।
उठो री मैया खोलो नीं किवाड़ी, मैं बंसी घर देने कूँ आई।
बहुत दिनों के उनींदें मोहन, सोने दे ब्रिरखभान दुलाई ।
इतनी सुन के जागे मोहन, बंशी के संग मेरी पूंची चुराई ।
सुणी नैन नहीं देखी, चलो तो देऊँ ठोढ़ बताई ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दोनूं पढ़े एक ही चतुराई ।

युगल-किशोर छवि का कैसा सुन्दर वर्णन है। वंशी लौटाने के बहाने, "पूंची" खोजने के बहाने, जिस किसी तरह भी हो, मिलना है अवश्य क्योंकि "दोनूं पढ़े एक ही चतुराई ।" किशोरावस्था की मनः स्थिति का कैसा स्वाभाविक चित्रण है। दैनिक जीवन में ओतप्रोत इस सौन्दर्य की प्रत्यक्ष अनुभूति वही कर सकता है जिसने जीवन को इतने निकट से देखा है। यहीं भक्त-कवियों की लोक-प्रियता का रहस्य छिपा है।

तेरो मुख नीको है कि मेरो राधे प्यारी ?
दरपण हाथ लियो नन्द नन्दन, सांची कहो वृषभान दुलारी।
हम का कहैं तुम हीं क्यों न देखो, मैं गोरी तुम श्याम बिहारी।
हमरो वदन ज्यों चंदा की उजियारी, तुमरो बदन जैसे निसि अंधियारी।
तुमरे सीस पर मुकुट बिराजै, हमरे सीस पर आप गिरधारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दोऊ ओर प्रीत बढ़ी अति भारी।

प्रणयानुभूति का ऐसा वर्णन नारी-हृदय की ही विशेषता है। "तुम्हारे सीस पर मुकुट बिराजे, हमरे सीस पर आप गिरधारी।" जैसी

अभिव्यक्ति प्रेम विभोर नारी के हृदय का मार्मिक चित्र है। अपने प्रेम और प्रेमपात्र पर उसको कितना अधिक गर्व है। इस पद में न तो कोई भाषा का ही कोई ऐसा चमत्कार है न भाव का ही अनोखापन —जो है वह है अन्तस्तल की मार्मिक अभिव्यञ्जना। सत्य की सरल अभिव्यक्ति स्वयं भी कितनी महान, कितनी प्रिय हो उठती है।

कहीए री, जो कहीबे की होई।
जाहि लगै सोई जानैं, सजनी, जावो घरि वीर कहा परि तोहि।
अनेक जतन करि पचि पचि हारी, बिरह बिथा जीय जानैं नहीं कोय।
चन्द्रसखी यह पीर मिटै तब, जै कहं वैद सांवरो होय।

चन्द्रसखी अपने विरह की अभिव्यक्ति को तूल देना नहीं चाहती— "कहिए जो कहिबे की होई" कह कर ही वह चुप हो जाती है। सूरदास की गोपियों की तरह वह न तो अपने आँसुओं की बाढ़ में ब्रज को डुबाती है न उधो से "कहो निर्गुण कौन देस को वासी" जैसा ही प्रश्न करतीं हैं। उसका दर्द वही जान सकती है, "जाहि लगै सोई जानैं, सजनी।" जब उसके दर्द को मिटाने वाला आया ही नहीं है तो और किसी की सहानुभूति प्राप्त करने से क्या होगा? वह तो स्पष्ट ही कहती है "जावो घरि बीर, कहा परि तोहिं।" उसकी पीर तो 'साँवरे' के आये बिना मिट नहीं सकती और जब "साँवरो वैद" बन आवेगा तो उसकी पीर स्वयं ही मिट जावेगी।

लगभग ऐसी ही अभिव्यक्ति मीराँ ने भी की है। विरहणी अपने आँसुओं की "लड़"[१] पोती रात गुजार देती हैं।

मैं विरहणी बैठी जागूं, जगत सब सोवै री आली।
विरहणी बैठी रंग महल में, मोतियन की लड़ पोवै।
इक विरहणी हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिन गिन रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल के बिछुड़ न जावै।

(पृष्ठ ७८ पद ११)

इसी भावना का द्योतक मीराँ का एक और पद भी प्राप्त है।

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोना होय।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस बिध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै, कि जिन लाई होय।
जौहरी की गति जौहरी जाने, कि जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं, बैद मिला नहीं कोय।
मीराँ की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद साँवलियाँ होय।

(पृष्ठ ३१६ पद ४)

चन्द्रसखी के उद्‌गारों की सहज स्वाभाविकता ही उन की विशेषता है। जिन पदों की रचयित्री का भी एकमात्र परिचय पदो में उल्लिखित उनका नाम भर ही हो, जिन के पदो को किसी पोथी या अन्य किसी तरह का भी कोई सहारा नहीं मिला, जो साहित्य, विद्वजनों द्वारा भी उपेक्षित प्रायः ही रहा वह भी जीवन की इस सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति के कारण जन जीवन की विभूति बन जीवित है। आडम्बर

हीन तन्मय प्रेम के इन चित्रों को प्रस्तुत करने वाले संत और भक्त कवि तथा कवयित्रियों ने न मात्र अपने लिये ही अमृतत्व को प्राप्त किया अपितु जन-जीवन को गति और प्रकाश के अक्षुण्ण स्रोत बन गये।

आचार्य कवियों का साहित्य पण्डितों का वाणी-विलास बन पोथियों की सीमा में स्वयं ही आबद्ध हो गये परन्तु भक्तजनों की ये अटपटी स्नेह भरी उक्तियाँ आज भी जीवन की प्रेरणा बनी हुई जनता-जनार्दन के हृदय में विराज रही है।

प्रस्तुत पुस्तक में चन्द्रसखी के पदों से तुलना रखते हुए मीराँ के पद भी दिये गये हैं। ये पद 'मीराँ-वृहत्-पद-संग्रह'[१] से उद्धृत हैं।

॥ इति ॥

---

१ प्रकाशक—लोक सेवक प्रकाशन, बनारस।

काव्य-संग्रह

वन्दना

१

मंगल आरति नन्दकुंवर की, यशुमति की राधावर की।
मंगल जन्म कर्म कुल मंगल, मंगल यशुमति माखन चोर की।
मंगल मोर मुकुट कुण्डल छवि, मंगल मुरली बजे घनघोर की।
मंगल व्रजवासी सब मंगल, मंगल गान करैं चहुँ ओर की।
मंगल गोपी ग्वाल सब मंगल, मंगल राधा नन्दकिशोर की।
मंगल नन्द यशोदा मंगल, मंगल सुतहिं खिलावैं गोद की।
मंगल गिरि गोवर्धन मंगल, मंगल वृन्दावन किशोर की।
मंगल कुञ्जवासी सब मंगल, मंगल शोभा है चहुँओर की।
मंगल श्याम जमुन जल मंगल, मंगल धार बहे अघहर की।
मंगल श्री हलधर सब मंगल, मंगल राधा जुगलकिशोर की।
मंगल या मूरति मन मोहै, चन्द्रसखी बलि जाऊँ चरण की।

२

मंगल आरति कीजै भोर।
मंगल मथुरा मंगल गोकुल, मंगल राधा नन्दकिशोर।
मंगल लकुट मुकुट बनमाला, मंगल मुरली है घनघोर।
मंगल नन्दग्राम बरसानो, मंगल गोवर्द्धन गिरि मोर।
मंगल वंशीवट तट यमुना, मंगल लता झुकी चहुँओर।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छबि, मंगल ब्रजवासी की ओर।

३

जय जय यशोदानन्द्न की, जग वन्दन की।
भाल विशाल माल मोतियन की, खौर विराजै चन्दन की।
पैठि पाताल कालि नाग नाथ्यो, फण पर निरत करावन की।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, हाथ लकुटिया चन्दन की।
इन्द्र ने कोप कियो ब्रज ऊपर, नखपर गिरिवर धारण की।
कैसी मारे कंस पछारै, असुरन के दल मंजन की।
उग्रसेन को राजतिलक दियो, रक्षा करि सब संतन की।
घण्टा ताल पखावज बाजै, गहरी धुनि सब सन्तन की।
आप तो जाय द्वारिका छाये, पल पल लहर तरंगन की।
आस पास रत्नाकर सागर, शोभित करत किलोलन की।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल रज वन्दन की।

४

भजो वृन्दाबन जय जमुना, जय वंशीवट जय फुलना।
कृष्ण चरण को ध्यान धरत ही, छूटि गयी मन की भ्रमना।
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में झूले पलना।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच में दान चुकाये ललना।
यमुना किनारे धेनु चरावै, माधुरी बेनु बजावै ललना।
पैठि पाताल कालियो नाथे, फण पर नृत्य कियो ललना।
वृन्द्रावन में रास रच्यो है, गोपी ग्वाल नचावै ललना।
सवरी के बैरि सुदामा के तन्दुल, रुचि रुचि भोग लगाये ललना।
दुर्योधन के घर मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खाये ललना।

जल डूबत गजराज उबारे, चक्र सुदर्शन धारे ललना।
कैसी मारे कंस पछारै, यमुना नीर बहाये ललना।
उग्रसेन को राजतिलक दियो, उनके वंश बढ़ाये ललना।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि के चरण पर चित धरना।

५

भजो सुन्दर श्याम मुकुट धारी ।
बदन कमल पर कुण्डल झलकै, अलकें सोहैं घुंघरवारी।
उर वैजेन्ती माल विराजै, वनमाला सोहै गुञ्जनवारी।
केशर भाल तिलक सिर सोहै, मुरली की छवि न्यारी।
पायन में पैजनिया सोहै, झूम झूम आवत गिरधारी।
वंसीवट तट रास रच्यो है, संग लिये राधा प्यारी।
वृन्दावन में खेलत डोलत, विहार करत है बनवारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल की बलिहारी।

६

बलिहारी लाल तेरे आवन की, मन भावन की ।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच में रास रचावन की।
चुनि चुनि कलियां मैं हार बनाऊँ, यदुवर उर पहिरावन की।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, मधुर मधुर मुसकावन की।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, मधुरी सी वेणु वजावन की।
पैठि पाताल कालिया नाथे, फण पर निरत करावन की।
इन्द्र कोप चढ़ै ब्रज ऊपर नख पर गिरवर धारन की।

केस पकरि हरि कंस पछारे, यमुना धार बहावन की।
उग्रसेन को राजतिलक दियो, उन्हूं के वंश बढ़ावन की।
वृन्दावन में रास रच्यो है, सहस गोपी इक कान्हा की।
जल डूबत गजराज उबारे, चक्र सुदर्शन धारन की।
दुर्योधन घर मेवा त्यागो, साग विदुर घर पावन की।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि के चरण चित लावन की।

७

मदन मोहन म्हाँरी बिनती सुनो।
करुणा सिन्धु है, जगत् बन्धु, संतन हितकारी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल की छिब न्यारी।
यमुना तीर धेनु चरावै, ओढ़े कामरी कारी।
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में, निरत करै गिरधारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल बलिहारी

निर्वेद

१

करणी कर ले हरि गुण गा ले, एक दिन धोखे में लुट जाय।
यो संसार रैन को सुपनो, यहाँ कोई नहीं अपणा।
वंदा तेरी भूठी कलपना, अगनी मांय जलु जाय।
माया में लिपट्यो तू वंदा, अब तो चेत आंख का अंधा।
आवेगा जम का रे तेरे मारेगा डंडा, हड्डी पसली टूट जाय।
उस मालिक ने पैदा किया, उसका नाम कबू ना लिया।
भूखे को भोजन नहीं दिया, अन्त समय पछिताय।
तू जाणे ये घर का मेरा, सगला[1] बेरी वण जा तेरा।
लेकर बांस फिरै चौफेरा, मंजल मंजल पुचांय।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणन चित लाय।

२

चार वरण में सोई बड़ा, जिन राम राम रटा रटा।
ये दम हीरा लाल, अमोलक दिन घटा घटा।
कोल किया जब बाहर आया, अब क्यूं डोले हटा हटा।

---

१ सब

काहे को जोड़े माल खजाना, काहे चिनावे ऊंची अटा ।
जम के दूत सब लेन कूं आवे, छोड़ चले सब राज पटा ।
भाई बन्धु सब झपन लागे, देखत नैरा फटा फटा ।
जब यह हंसा करे पयाना, सब कूं लागे खटा खटा ।
दुनियां मतलब की गरजू, स्वारथ बोले मीठा मीठा ।
चन्द्रसखी के लोभ भजन को, काना कुण्डल सिर मोर लटा ।

पाठान्तरः—

चार वरण में सोई बड़ा, जिन राधा कृष्ण रटा रटा ।
जब जम की तलबी आवेगी, छोड़ जाय सम लटा पटा ।
वहां आया तू कौल करार कर, यहां फिरता तू नटा नटा ।
अपने कुटुम्ब को ऐसा देखे, पलक उठाये पटा पटा ।
जब तेरा हंसा चल्या जात है, छोड़ जाय तू राज पटा ।
यह संसार मतलब का गरजी, वातां करतां झूठ मूठा ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, कानन कुण्डल मुकुट जड़ा ।

२

करमन की गति न्यारी, मैं किस विध लिखूं मुरारी ।
उज्वल पंख दिये बगुले को, कोयल कर दयी कारी ।
छोटे छोटे नैरा दिये हस्ती को, सोने की अम्बारी ।
बड़े बड़े नैरा दिये मिरगे को, बन बन फिरत सिकारी ।
चातुर नार झुरै पुत्रन को, मूरख जरा जरा हारी ।
मूरख राजा राज करत है, पंडित भये भिखारी ।

वेश्या ओढ़ै साल दुशाला, पतिवरता नारि उघारी ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तन मन जावूं बलिहारी ।

ऐसा ही पद निम्नांकित रूप में मीराँ के नाम पर भी प्रचलित हैः—

करम की गति न्यारी सन्तो, करम की गति न्यारी।
बड़े बड़े नयन दिये मरघन कु, वन वन फरत उघारी रे।
उज्वल वरन दीनी बगलन कु, कोयल कर दीनी कारी रे।
और नदीयन जल निरमल कीनो, समुदर कर दीनी खारी रे।
मुरख कु तुम राज दियत हो, पंडित फरत भिखारी रे।
मीरां के प्रभु गिरधर ना गुन, राना जी तो कान विचारी रे।

(पृ० २२० पद ३६५)

बाल लीला

१

आजु सखी नंद नन्दन प्रगटे, गोकुल बजत बधाई री।
रोहिणी नक्षत्र मास भादों को, योग लगन तिथि आई री।
गृह गृह से सब बनिता बनि के, मंगल गावत आई री।
जो जैते तैसे उठि धाई, आनन्द उर न समाई री।
चोवा चन्दन और अरगजा, दधि की कीच मचाई री।
यमला अर्जुन वृक्ष उपारे, यशुमति सुत उर लाई री।
बन्दी जन गन्धर्व गुन गावै, शोभा वरणि न जाई री।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल चित लाई री।

उपर्युक्त पद में कृष्ण-जन्म के शुभावसर पर नन्द के घर छाये उल्लास और मंगल का वर्णन है अतः पद की छठि पंक्ति का शेष संपूर्ण पद से भाव-सामंजस्य नहीं होता। संभवतः यह पंक्ति किसी अन्य पद से यहां जुड़ गयी हो।

२

आजु यहां मंगल गोकुल में, कृष्ण चन्द्र अवतार लिये।
गृह गृह से सब गोपी आई, मधुरे स्वर से गान किये।
मारण कारण चली पूतना, दूध पियत हरि प्राण लिये।

अघासुर मार बकासुर मारे, दावानल को पान किये ।
यमला अर्जुन वृक्ष उखारे, यादव कुल को तारि लिये ।
पैठि पाताल कालि नाग नाथ्यो, फण पर नृत्य कराय लिये ।
सात दिवस गिरि नख पर धारे, इन्दर को मद मारि लिये ।
केस पकरि हरि कंस पछारे, उग्रसेन को राज दिये ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल चित लाय लिये ।

यह पद भी कृष्ण-जन्म के अवसर पर नन्द घर छाये आनन्द के वर्णन से ही प्रारम्भ होता है, परन्तु बाद में कृष्ण की प्रायः बाल–लीलाओं का वर्णन है । पहले पद की छठी पंक्ति और इस पद की पाचवीं पंक्ति के प्रथमांश का भाव और भाषा साम्य विचारणीय है ।

३

परम धाम गो लोक छोड़ि कै, वृन्दावन हरि आयो री ।
कृष्ण पुत्र वसुदेव देवकी, नन्द भवन पहुँचायो री ।
धन्य भाग है यशुमति, जिनहीं परम सुख पायो री ।
फूले फिरत सकल ब्रजवासी, आनन्द उर न समायो री ।
खबर भई जब कंसराय को, पूतना वेगि पठायो री ।
मारण आई आप नसाई, जननी की गति पायो री ।
शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, देवन दुन्द बजायो री ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि के चरण चित लायो री ।

४

कहन लगे मोहन मैया मैया ।
मथुरा मे होय बालक जन्मै, घर घर बजत बधैया ।
नंद महर जी को बाबा ही बाबा, अरु बलदाऊ को भैया ।
दूर खेलन मत जाओ मेरे ललना, मारेगी काऊ की गैया ।
सिंह पोल पर ठाढ़ी जसोदा, घर आवो दोनों भैया ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, जसुमति लेति बलैया ।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ संगति का अभाव है । ऐसा ही एक पद सूरदास का भी है । इस पद को सूरदास के पद का गेय रूपान्तर कहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

कहन लगे मोहन मैया मैया ।
पिता नंद सो बाबा, अरु हलधर सो भैया ।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहत यशोदा, वै लै नाम कन्हैया ।
दूरि कहूं जिनि जाहु ललना, रे मारेगी काहू की गैया ।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर घर लेत बलैया ।
मनि खंभन प्रतिबिम्ब विलोकत, नचत कुंवर निज पैया ।
नंद जसोदा जी के उर ते, इह छवि अनत न जइया ।
सूरदास प्रभु तुमरे दरसन को, चरनन की बलि गइया ।

५

नाचैं नंदलाल नचावै वाकी मैया ।
रूमक भूमक पांय नेवर बाजै, ठुमक ठुमक पांव धरत कन्हैया ।
दूध न पीवै कान्हो दहीय न खावै, माखण मिसरी का बड़ खवैया ।

पाट पटम्बर कान्ह ओढ़ न जाणे, काली कमली का बड़ा ओढ़ैया।
विन्द्राबन में रास रच्यो है, सहस गोपी में. नाचै एक कन्हैया।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल की मैं लेवूं बलैया।

पाठान्तरः—

नाचै नन्दलाल नचावै वा की मैया।
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में पग धारो री कन्हैया।
रूमक भूमक पग नूपुर बाजै, ठुमक ठुमक पग धारो री कन्हैया।
दूध न पीवै ललना दहिया न खावै, माखन को लाला बड़ो री खवैया
शाल दुशाला मनहूं न भावै, कारी कामरी लाला बड़ो री ओढ़ैया।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, बंशी को लाल बड़ो री बजैया।
वृन्दाबन की कुञ्ज गलिन में, सहस गोपी इक भयो री कन्हैया।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल की लेऊँ बलैया।

६

बाजे बाजै लाल तेरी पैंजनियां हो रून भुनिया।
पैंजनियां जै अधिक सुहावै, मोहि लिये सुर नर मुनियां।
नील अंग पीत भंगुलिया, रत्न जड़ाव की पैंजनियां।
चन्दन चर्चित अंग मनोहर, सिर पर सोहत चौतनियां।
यशुमति सुत को चलन सिखावै, अंगुली पकरि लिये दोउ जनियां।
छोटे छोटे चरण चतुर्भुज मूरति, अलक झलक रही नागिनियां।
शिव ब्रह्मा जाको पार न पावैं, ताहि नचावैं ग्वालिनियां।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तीन लोक के तुम धनियां।

७

आजु मेरो कहां अटक्यो है गिरधारी।
खोजत खोजत फिरति यशोदा, पर घर करत पुछारी।
कारण कवन लाल नहिं आयो, केश काल भये भारी।
यूथ यूथ सखियां चली आईं, देत यशोदे गारी।
नन्द नन्दन को जोर जुठैनों, खेंचत अंचल सारी।
रूमक झूमक मोहन चलि आये, नयन नीर भरि वारी।
मुरली मोरी छीन लई है, इन सखियन मोहि मारी।
हंसि मुसुकाय कहत राधे जी, दूषण नहीं हमारी।
श्याम सुन्दर मैं तुम्हरे दरस को, चन्द्रसखी बलिहारी।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-सामंजस्य का अभाव है।

८

दधि पीले श्याम सलोना।
काहे की तेरी बनी है मथनियां, कौन पत्र के दोना।
आठ काठ की बनी मथनियां, कदम पत्र के दोना।
कौन घाट पर ग्वाल जुरे हैं, कौन घाट पर कान्हा।
चीर घाट पर ग्वाल जुरे हैं, कालिन्दी पर कान्हा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि के चरण चित होना।

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन है।

९

हरि जी से कौन दुहावत गैया ।
कारे आप कामरी कारी, आवत चोर कन्हैया ।
कनक दोहनी सोहैं हाथ में, दुहन बैठे अधपैया ।
खन दूहत खन धार चलावत, चितवनि में मुसकैया ।
गोवन छोड़ि गहै मेरो अंचल, यही सिखायो तेरी मैया ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, चरण कमल बलि जैया ।

पद की दूसरी और पांचवी पंक्ति की अभिव्यक्ति और शेष पदाभिव्यक्ति में अर्थ-साम्य नहीं है ।

१०

अब कहां जायगी रे, लीन्हों हाथ पकड़ के ।
निर्भय दधि खाने को बैठो, आगे मटकी धर के ।
मोय देख भोलो बन बैठ्यो, खाय ले नियति भर के ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, मोर मुकुट सिर धर के ।

११

मोहन जिन छीनो मटकिया मोरी ।
परि गई बानि, फिरत कहां लरिका, ढूंढत सांवरी गोरी ।
धाई धाई अंचरा झकझोरत, कौन वही बरजोरी ।
चन्द्रसखी हित बालकृष्ण प्रभु, लागी हो हरि दरसन की होरी ।

उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति में अर्थसंगति नहीं है अतः इस पद को निश्चित रूपेण अप्रामाणिक ही मान लेना उपयुक्त होगा ।

१२

नन्दलाल दही मेरो खाय गयो री ।

कुछ खायो कछु वै ढरकायो, ग्वालन हाथ लुटाय गयो री ।
लाख कही मोरी एक न मानी, मन चाही बात बनाय गयो री ।
तोड़ फोड़ सब दयी मटुकियां, जोरी कर धमकाय गयो री ।
जाय कहूं जसोदा के आगे, तेरो लाल इतराय गयो री ।
सांवरी सूरत, माधुरी मूरत, जो मन भाय समाय गयो री।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, आवागमन मिटाय गयो री।

१३

नन्द राणी भलो सुत जायो ए ।
बरजां तो बरज्यो नहिं माने
नाय डरे वो डरायो ए ।
फलसो खोल खिड़कियाँ खोले।
पीढ़े ऊपर ऊखल मेले ।
छीको तोड़ बगोयो ए ।
मटकी उतार आगे धर मेली.
मक्खन भोग लगायो ए ।
नौलख धेन नन्द घर दूजे,
चोरां के चोर कुहायो ए ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब,
हरि के चरण चित लायो ए।

शुद्ध राजस्थानी में बाल-लीला वर्णन का यही एक पद है।

॥

राधा-वर्णन

१

कैसे ब्याहूं राधे कन्हैयो तेरो कारो ।
घर घर री वो गऊ चरावै, ओढ़ण कंबल कारो ।
छीन झपट दधि खात बिरज में, चलैगो कैसे राधे को गुजारो ।
मोरी राधा अजब सुन्दरी, तेरी कन्हैयो कारो ।
कारो कारो मत करो, कान्हों है बिरज को उजियारे ।
नाग नाथ रेती पर डार्यो रे, मारी फूंक कृष्ण भयो कारो ।
पीताम्बर की कछनी काछे, मोहन वंशी वारो ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, कान्ह मिलो त्रिलोकी सूं न्यारो ।

पद की सातवीं पंक्ति का शेष पद से अर्थ-साम्य नहीं होता ।
मीराँ के नाम पर भी ऐसा ही एक पद प्रचलित है ।

तेरो कान्ह कालो हो माई, मेरी राधे गोरी हो ।
ऐसी राधे रूप बनी, कंचन सीं देह बनी हो ।
ऐसो कारो कान्ह पर, कोटि राधे बारी हो ।
गोकुल उजार कीन्हों, मथुरा बसाय लीनी ।
कुब्जा को राज दीनो, राधे को बिसारी हो ।
बिनती सुनो ब्रजराज, लागंगी तुम्हारे पाय ।
मीराँ प्रभु सो कहियो जाय, सेवक तुम्हारी हो ।

(पृ० २०६ पद १)

मीराँ के नाम पर प्रचलित पद में पूर्वापर संबंध का निर्वाह नहीं हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि चन्द्रसखी का ही पद रूपान्तरित हो कुछ कम बेश के साथ मीराँ के नाम पर चल पड़ा हो।

२

तेरो मुख नीको है कि मेरो राधे प्यारी ?
दरपण हाथ लियो नन्द नन्दन, सांची कहो वृषभान दुलारी।
हम का कहैं तुम हीं क्यों न देखो, मैं गोरी तुम श्याम बिहारी।
हमरो बदन ज्यों चंदा की उजियारी, तुमरो बदन जैसे निसि अंधियारी।
तुमरे सीस पर मुकुट विराजै, हमरे सीस पर आप गिरधारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दोऊ ओर प्रीत बढ़ी अति भारी।

यह पद निम्नांकित परिवर्तनों के साथ भी प्रचलित है।

पद की तीसरी पंक्ति में प्रयुक्त "मैं" के बदले "हम" का प्रयोग हुआ है। पद की पांचवीं पंक्ति में "तुमरे" के स्थान पर "तिहारे" और "आप" के स्थान में "तुम" का प्रयोग हुआ है। पद की अंतिम पंक्ति का उत्तरार्ध है, "चरण कमल पद जाऊं बलिहारी।"

३

बोलत नाहीं राधे प्यारी काहे से।
पीली पीली देह वणी राधे की, जल जमना के न्हाये से।
उजला उजला दांत वण्या राधे का, मिस्सी की रेख लगाये से।
काला काला केस वण्या राधे का, तेल फूलेल लगाये से।
तीखा तीखा नैण वण्या राधे का, सुरमा की रेख लगाये से।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरणां में ध्यान लगाये से।

४

खंदिक बीच क्यों ठाढ़ी राधा प्यारी ।
माथे हाथ दिये मन सोंचत, कह लगि तेरे प्यारी ।
देखेगें सो का कहेंगे, सुन ऋतुराज कुमारी ।
अब ही लाल गये गोअन में, जब आवन की त्यारी ।
बंसी बाज रही मोहन की, मोहि लई ब्रजनारी ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तन मन धन बलिहारी ।

पदाभिव्यक्ति अर्थ-हीन है। राधा के लिये "ऋतुराज कुमारी" जैसा संबोधन इस पद की विशेषता है।

५

दो नयनन में राधे बिलमाई रे सांवरा ।
बैठि कदम पर बंसी बजावैं, सब सखियां मिल आई ।
एक सखी उठ पायल पहिरै, दूजी पहर न पाई ।
एक सखी उठ अंजन सारै, दूजी सार न पाई ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हारि चरणन चितलाई ।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-संगति का अभाव है।

६

राधे फूलन मथुरा छाई ।
कितने फूल सरग सों उतरें, कितने मालिनी लाई ।
उड़ि उड़ि फूल पड़े यमुना में, राधे बीनन आई ।

राधा रानी जी तू तो बड़ी ब्रज की सखियाँ रे,
ब्रज की सखियाँ, मोरी लागी निभानी अंखियां।
मोहना तू तो चन्द्रसखी को प्यारो रे,
सखी को प्यारो नंदजू को दुलारो।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-सामंजस्य नहीं है।

११

कान्हा धरै रे मुकुट खेलै होरी।
कित से आये कुंवर कन्हैया, कित से राधे गोरी।
कितने बरस के कुंवर कन्हैया, कितने राधे गोरी।
बारै बरस के कुंवर कन्हैया, सात बरस की राधे गोरी।
हिलमिल फाग परस्पर खेलत, अबीर गुलाल भरे झोरी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, युगल चरण पर चित मोरी।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-सामंजस्य नहीं है।

१२

डस गयो कालियो नाग, राधे जी की अंगुली में।
सात सखी मिल चली बाग में, कर सोले सिणगार।
ऐसो डंक दियो कालि ने, पीलो पड़ गयो हाथ।
नाड़ी वाँकी[१] ठीक नहीं है, कीजै कौन उपाय।
एक सखी पाणीड़ो ल्यावै, दूजी ढोलै बाय[२]।
तीजी सखी तो औषध ल्यावै, चोथी बैद बुलाय।

---

१ उनकी। २ ढोलै बाय-हवा करना।

१३

बरसाणे से वैद बुलायो, बैठ्यो पलंग पर आय ।
नाड़ी की तो कदर न जाणै, नैणां से नैण मिलाय ।
चन्द्रसखी मोहन की मिलनी, मिलनी बारम्बार ।
नन्द महर को कंवर कन्हैया, ले जायगो लेर[1] लगाय ।

पद की अंतिम दो पंक्तियों का शेष व पदाभिव्यक्ति से अर्थ-सामंजस्य नहीं होता। चन्द्रसखी मोहन.....मिलनी बारम्बार पंक्ति अर्थहीन भी है।

१४

पती सखी माधो जी की आई ।
आप न आये श्याम मनोहर, ऊधव हाथ पठाई ।
बिन दरसण व्याकुल भये जियरा, नैनन नीर बहाई ।
मन सकुचाय घूंघट पट की, पतियां छतियां लगाई ।
कपटी प्रीत करी मनमोहन, मोरी सुध बिसराई ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दरसण बिन अकुलाई ।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-सामंजस्य नहीं है।

१—पीछे ।

१३

श्री कृष्णचन्द्र मणियार[1] बने, बृसभान भवन में लाई चूड़ियां।
वृन्दावन की कुंजगलि न में, केत[2] फिरे कोई पैरो चूड़ियां।
गोरा बदन राधे जी ठाढ़े, हम को पेरई दो हरी चूड़ियां।
अंगली पकड़ पोंचो पकड़यो, हंसु हंसु मोड़ी मोरी गोरी बहियां।

चन्द्रसखी के पदों के अन्तर्गत पाये जाने वाले इस पद में ऐसा कोई सूत्र नहीं जिस आधार पर इसको चन्द्रसखी का माना जाय।

१—मणियार प्रायः मारवाड़ी मुसलमान होते हैं। इनकी रहन-सहन वेष-भूषा और लोकाचार आदि में हिन्दू और मुस्लिम से संकृतियों का सम्मिश्रण है। ये लोग लाख की चूड़ियां जो राजस्थान में सौभाग्य सूचक मानी जाती हैं, बनाते और पहनाते हैं अतः इनका प्रवेश अन्तःपुर में भी बड़ी आसानी से होता है। युग की मांग के अनुसार ये लोग आजकल कांच की चूड़ियां भी रखने लगे हैं।

२—कहते।

बांसुरी-वर्णन

१

चलो सखी वृन्दावन चलिये, मोहन वेनु बजाये री ।
वेनु सुनत शिवशंकर मोहे, ध्यान धरण नहीं पाये री ।
वेनु सुनत ब्रह्मादिक मोहे, वेद पढ़ण नहीं पाये री ।
वेनु सुनत सुर नर मुनि मोहे, भजन करन नहीं पाये री ।
वेनु सुनत गो बछरा मोहे, दूध पियन नहीं पाये री ।
वेनु सुनत सब गोपिन मोही, झुण्ड उठि धाये री ।
वेनु सुनत खग पंछी मोहे, चुगा चुनण नहीं पाये री ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणन चित लाये री ।

२

वंशी यमुना पर बाज रही रे, लाल,
छबि निरखन कैसे जाऊँ री आज ।
बंशी की टेर सुनी मेरे श्रवनन, तन मन सुध बिसरी रे लाल ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, चन्दन खोर लगी रे लाल ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरणन चेरी भई रे लाल ।

३

बंसी बजायी सांवरे, मैं सुध बुध भूली रे ।
सांवरिया मोहनलाल, बंसी कामणगारी[1] रे ।

१—जादू करने वाली ।

घोल भरोसे चौक में मैं, दही ज ढारयो रे ।
रयी भरोसे भूल सूं मैं, आण घमोड़यो रे ।
दूध भरोसे नीर में मैं, जावण दीनों रे ।
नीर भरोसे दूध सों मैं, असनाण कीनों रे ।
बालक भरोसे बाछियों मैं, गोद रमायो रे ।
बाछिये भरोसे बालक ने मैं, खूंटे बांध्यों रे ।
पगां भरोसे पायल ने मैं, हाथां पहरी रे ।
नाक भरोसे नाथली मैं, काना पहरी रे ।
सांवरिया गिरधारी म्हाँरे, कुंज पधारो रे ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तन मन वारो रे ।

४

तैं मेरो मन मोह्यो बंसीवाला,
मधरी वीणा बजाय के ।
सावण मास बांस को बिड़लो, सीच्यों चित मन लाय कैं ।
अब तो बैरन भई हैं बाँसुरी, मोहन के मुख आय के ।
मैं जल जमुना जात रही, मारग रोक्यो आय के ।
संग की सहेली मेरी क्या तो कहेंगी, सास नणद से जाय के ।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, मधरी सी वेणु बजाय के ।
या बंशी में सांवरो अचरज गावै, राधा को नाव सुनाय के ।
मोर मुकुट काना बिच कुंडल, तुर्रा तार लगाय के ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणां चित ल्याय के ।

पदाभिव्यक्ति में पूर्वापर-सम्बन्ध का निर्वाह नहीं हुआ है ।

५

भोर ही बाजी मुरलिया, कैसे धरूं जिय धीर ।
गोकुल बाजी, वृंदावन बाजी, बाजी बाजी जमुना के तीर ।
मैं जल जमुना भरन जात री, भरण नहीं दे मोहे नीर ।
बैठ कदम पर बंसी बजहिं, बंसरी को लग्यो मोरे तीर ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, आखर जात अहीर ।

उपर्युक्त दोनों पदों में "मैं जल जमुना भरन जात रही" जैसी अभिव्यक्ति हुई है। इस पद में हुई "आखर जात अहिर" जैसी अभिव्यक्ति मीराँ के नाम पर प्रचलित वियोगात्मक पदों में भी मिलती है।

६

अरी मुरली मन हर लियो मोर ।
मुकुट मनोहर मधुर चन्द्रिका, नागर नंद किशोर ।
मधुर मधुर सुर वेणु बजावत, मोहन चित को चोर ।
सुनत टेर शिथिल भई काया, जिया ललचत ओही ओर ।
अद्भुत नाद करत बंसी में, मोहन चन्द्र चकोर ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, अरज करूं कर जोर ।

७

ए री बंशीबारो कान ।
चन्द्रबदन मृगलोचन राधे, पायो श्याम सुजान ।
इत से आयी राधा रानी, उत से आयो कान ।

अधबीच झगड़ो रोप दियो, मांगे दधि को दान ।
कब के दानी भये हो कान्हां, कब हम दीन्हों दान ।
नंद मंहर घर धेनु चरावे, सुण्यो अनोखो कान ।
मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, कुण्डल झिलके कान ।
मुख पर मुरली अधिक बिराजे, केसर तिलक लुभान ।
सुर नर मुनि ज्याको ध्यान धरत है, गावत वेद पुराण ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दरशण दीज्यो आण ।

इस पद में बंशीलीला का नहीं अपितु बंशी-वादक की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है। साथ ही स्तुति की गयी है। इस पद के दो अन्य रूपान्तर भी मिलते हैं। एक रूपान्तर का अंतर तो नगण्य है। जैसे 'कान' "कान्ह" में और "दान" "दानी" आदि शब्द "डान" "डानी" आदि में परिवर्तित हो जाते हैं। पद की पहली पंक्ति में "मां" शब्द और जुड़ जाता है तथा सातवीं पंक्ति में प्रयुक्त "झिलके" शब्द "झलके" में परिवर्तित हो जाता है। लोकगीतों में ऐसे परिवर्तन अत्यन्त स्वाभाविक हैं। दूसरा पाठान्तर निम्नांकित है।

ए री माँ, बंसीवारो कान्ह ।
चन्द्र वदन मृगलोचन राधे, मोह्यो श्याम सुजान ।
गढ़ मथुरा की गुजरी, गढ़ गोकुल को कान्ह ।
अधबीच झगड़ा माँड़ियो, सरे मांगे दही को दान ।
कब के तुम दानी भये, कब हम देती दान ।
बाबा नन्द को धेनु चरावे, देख्यो अनोखो कान्ह ।
मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, कुण्डल झलके कान ।

मुखड़े पर मुरली सोहै, केसर तिलक लुभान।
जमुना के नीरे तीरे रास रच्यो है, बंसी में सुरग्यान।
बंशी बजा मेरो मन हर लियो, मार बिरह को बान।
सुर नर मुनि जन ध्यान धरत है, गावत वेद पुरान।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणां मेरो ध्यान।

८

श्याम की बंसी बन पाई।
उठो री मैया खोलो नीं किवाड़ी, मैं बंसी घर देने कूं आई।
बहुत दिनों के उनींदें मोहन, सोने दे बिरखभान दुलाई।
इतनी सुन के जागे मोहन, वंशी के संग मेरी पूंची चुराई।
सुणी नैन नहीं देखी, चलो तो देऊं ठोढ़ बताई।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दोनूं पढ़े एक ही चतुराई।

यही पद निम्नांकित पाठ भेदों के साथ भी मिलता है। पद की दूसरी पंक्ति में "मैया" की जगह "जसोदा" "दुलाई" की "जाई" प्रयोग मिलता है। पद की पाचवीं पंक्ति में दो शब्द और जुड़ जाते हैं जो अर्थ और लय दोनों ही दृष्टिकोण में अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यह पंक्ति निम्नाकिंत हैं ।

"काना सुनी नहीं, नैन नहीं देखी, चलो री तो देऊं ठोढ़ बताई।

इस पद का एक और पाठान्तर भी प्राप्त है।

स्याम की बंसी बन पाई।

उठो री जसोदा मैया, खोलो री किवाड़ी।
मैं बंसी घर देवन कुं आई।
बहुत किनन से सोये री मोहन, सोवन दे वृषभानु की जायी।
इतनी सी सुण के निकस आये मोहन, बंसी के साथ मोरी पोथी चुराई।
मैं तो जाणे थी मेरो मान बधेगो, उल्टी श्याम मेरे चोरी लगायी।
बिन दुलड़ी बंसी न देवूं, हम से श्याम छोड़ो चतुराई।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणां में चित लगांई।

उपर्युक्त पद की छठीं पंक्ति में "हमसे" के बदले "हटो" प्रयोग भी मिलता है।

६

श्री राधे रानी दे डारो ना बांसुरी मोरी।
काहे से गाऊं राधे, काहे से बजाऊं, काहे से लाऊं गैया घेरी।
मुखड़े से गावो कान्हा, ताल बजावो, चिटिया[1] से लाओ गैया घेरी।
या बंसी में मेरो प्राण बसत है, सो बंसी गई चोरी।
नहीं तो सोने की कान्हा, नहीं तो रूपे की, हरे बांस की पोरी।
कब को खड़्यो जी राधे अरज करत हूं, देखो गरीबी मोरी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चिरजीं रहो यह जोरी।

---

१ छड़ी

पाठान्तरः—

श्री राधे रानी, दे डारो नी बंसी मोरी।
जा बंसी में मेरो प्राण बसत है, सो गई चोरी।
सोने की नहि कान्हा रूपे की नाहीं, हरे बाँस की पोरी।
काहे से गावूं राधे, काहे से बजावूं, काहे से ल्यावूं गैया घेरी।
मुख से गावो प्यारे, ताल से बजावो, लकुटिया से ल्यावो गैया घैरी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणन की चेरी।

ऐसा ही एक पद मीरां के नाम पर भी प्रचलित है।

राधा प्यारी दे डारो बंसी हमारी।
ये बंसी में मेरा प्राण बसत है, वो बंसी गई चोरी।
ना सोने की बंसी ना रूपे की, हरे हरे बाँस की पोरी।
घड़ी एक मुख में, घड़ी एक कर में, घड़ी एक अधर धरी।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पर बारी।

(पृष्ठ २८८, पद १०)

उपर्युक्त पदों से साम्य रखता हुआ एक और पद मीरां के नाम पर प्रचलित है। यही पद "बृहद्रागरत्नाकर" के आधार पर सूरदास का सिद्ध होता है।

कवन गुमान भरी बंसी, तू कवन गुमान भरी।
अपने तन पे छेद परेचे, बाला तूं बिछरी।
जांत पांत सब तेरो मैं जाणूं, तू वन की लकरी।
मीराँ कै प्रभु गिरिधर नागर, राधा से क्यूं झगरी।

(पृष्ठ २८७, पद ६)

बांसुरी तू कवन गुमान भरी।
सोने की नाहीं रूपे की नाहीं, नाहीं रतन जरी।
जात सिफत तेरी सब कोई जानै, मधुबन की लकरी।
क्या री भयो जब हरि मुख लागी बाजत बिरह भरी।
सूरदास प्रभु अब क्या करिये, अधरन लागत री।

(बृहद्रागरत्नाकर पृ० ४८, पद १५०)

प्रस्तुत पदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकप्रियता के कारण कुछ पदों में कितने अधिक परिवर्तन हुए हैं। किसी भी लिखित आधार के अभाव में पद की प्रामाणिकता का निर्णय दुरूह ही है।

१०

देखो री बांसरी में कान्ह, राधे राधे गावे री।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, बीच में कान्ह रास रचावे री।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कानन में कुण्डल झलकावे री।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छबि, चित वाँरो चरणाँ जावे री।

११

दधि दूंगी रे सांवरिया प्यारे, वीण बजाय।
ऐसी रे बजाय जैसी बनखण्ड सुणे रे,
चरती गाय मगन होय जाय।
ऐसी रे बजाय जैसी जमुना पार सुणे रे,
बहतो नीर तुरत थम जाय।

ऐसी रे बजाय जैसी मेरी मन भावै रे,
सङ्ग री सहेलड़ी मगन होय् जाय।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब,
हरि चरणाँ चित दियो हैं लगाय।

१२

ज़मना के तीर कान्हा बंसरी बजाओ थोड़ी धीरे धीरे।
जमना के किनारे बाजी बंसरी
मोहे पसु पत्ती नाग, ए, री, तीरे तीरे।
बंसरी की टेर या जियरा लुभावत,
पथरा सुनत बहन लागे झिर झिर।
सुन सुन के सखी धावतिं, घर के
काम काज छांड़ि, चली सीरे सीरे।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब,
मोहन तन बसत बेख पीरे पीरे।
पद की अंतिम पंक्ति का उत्तरार्धं अर्थ-हीन है।

१३

मैं तो बंसी की टेर सुनूंगीं।
जो तुम मोहन एक कहोगे, एक की लाख कहूंगीं।
जो तुम मोहन साच कहोगे, राधा बन के रहूंगी।

चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरणाँ में लिपट रहूंगी।

इस पद का निम्नांकित एक पाठ-भेद निम्नांकित रूप में मिलता है। संपूर्ण पद में अंतिम क्रियापदों की पुनरुक्ति की गई है जिसके अंत में "मैं तो" जोड़ दिया गया है। उदाहरणार्थः

"जो तुम मोहन एक कहोगे

एक की लाख कहूँगी, कहूँगी, मैंतो।

भाषा की आधुनिकता और भावों की असंबद्धता पद को लोक-गीत-परंपरा की देन ही सिद्ध करती है।

वियोग

१

लगनि लगी तब लाज कहा री।
लाख चवाव करो किनि कोऊ, बिन देखे कैसे जात रह्यो री।
धरत धीरा धीर प्रेम बलि कठिन, लगनि की पीर म्हारी।
चन्द्रसखी जैसे बालकृष्ण छिव, नैन पै कैसे जात रह्यो री।

पद की अंतिम दो पंक्तियां अर्थ-हीन हैं। "चन्द्रसखी जैसे बालकृष्ण छिव" जैसी टेक भी इस पद की विशेषता है।

२

लगनि भडी लगी हो नन्द ग्वाले।
घायल करि करि मायल कीन्हीं, नैनन् से रतनाले।
दै मनू दरस दरद की दारूँ, मोहन मुरली वाले।
चन्द्रसखी सखी हित बालकृष्ण प्रभु, इसक वने घर घाले।

पदाभिव्यक्ति व अर्थहीन है। "चन्द्रसखी सखी हित बालकृष्ण प्रभु"। जैसी टेक इस पद की नवीनता है।

३

महा कठिन यह लगनि निगोड़ी।
मति कोऊ प्रेम के फंद मे परियो, करि नैनन की होड़ा होड़ी।

चैन नैन देषै ही पैयें, पलक वोट दोष मोट निगोड़ी ।
वृन्दावन प्रभु सौं चित अटक्यो, अब कैसे यह जात है छोड़ी ।

चन्द्रसखी के पदों के अन्तर्गत ही यह पद भी पाया जाता है यद्यपि ऐसा कोई सुत्र इस पद में प्राप्त नहीं जिस आधार पर इस को चन्द्रसखी रचित कहा जा सके । स्व०, पुरोहित जी के मतानुसार यह पद किसी अन्य कवि का है । द्वितीय पंक्ति का उत्तरार्द्ध अर्थ-हीन है । उपर्युक्त तीनों पदो में गहरा भाव-साम्य विचारणीय है ।

४

कहीए री जो कहीबे की होई ।
जाहि लगै सोई जानैं सजनी, जावो घरि वीर, कहा परि तोहि ।
अनेक जतन करिवी पचि पचि हारी, बिरह बिथा जीय जानैं नहीं कोय।
चन्द्रसखी यह पीर मिटै तब, जै कहं वैद सांवरो होय ।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-संगीत नहीं है । मीराँ के नाम प्रचलित पद "मैं तो दरद दिवानी" की अन्तिम पंक्ति "मीराँ की पीर मिटै जब प्रभु आप बैदा होय" और इस पद की अंतिम पंक्ति का भाव-भाषा-साम्य बिचारणीय है ।

५

माधो जी ने कैयां बिसारां जी ।
गिरधर गोपाल लाल ने, पलपल चितवां जी ।
मो मन रहै कह्यो न मानै, कब को बैरी जी ।
भात खिजायी, अच्छ उपाड़या, वो दिन सालै जी ।
एक समैं हरि गउवां चरायी, जमना के तीरां जी ।

काली में कूद पड़ियां, हरि नागज नाथ्यों जी।
सात बरस का भयो सांवरों, गिरंवर धारयो जी।
इन्दर कोप चढ्यो ब्रज ऊपर, पच पच हारयो जी।
गोकुल ढूंढ बृन्दावन ढूढ्यो, मथरा हेरयो जी।
ऐसी वेण बजायी श्याम, म्हारों मन हर लीन्हों जी।
स्याम कठोर त्याग दयी हमकैं, गोपी टेर जी।
ले अक्रूर गयो मथरा कूं, कब को वैरी जी।
एक बेर ल्यावो, उधो, म्हैं पूछा मन की जी।
चन्द्रसखी पर महर करो, चेरी चरणन की जी।

६

बता दे रे सखी, सांवरा को डेरो किती दूर।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, जमुना बहत भरपूर।
इत मथुरा की मस्त ग्वालिन, मुख पर बरसत नूर।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, सांवरे से मिलनो जरूर।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-संगति नहीं है। यही पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है।

बता दे सखी सांवरिया को डेरो किती पूर।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी बीच बहे यमुना तूर।
मथुरा जी की मस्त गुवालिनी, मुख पर बरसे नूर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सांवरे से मिलना जरूर।

(पृष्ठ १५७, पद ३)

७

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।

आसन मार गुफा माहि बैठ्यो, याही भजन की रीत।
असल चन्दन की धूनी रमाय, रंगमहल के बीच।
पाट पाटम्बर की झोली सिमाधूं, रेशम तनिया बीच।
मैं तो जाणे थी जोगी संग चलेगा, छांड़ि गया अधबीच।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, जोगिया किस का मीत।

कुछ परिवर्तनों के साथ यही पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है—

कोई दिन याद करोगे, रमता राम अतीत।
आसण माँडि अडिग होय बैठ्या, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणू जोगी संग चलेगा, छांडि गया अधबीच।
आत न दीसै, जात न दीसै, जोगी किस का मीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवै चीत।

चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित पद में मध्य की दो पंक्तियों में अर्थ-संगति का अभाव है। साथ ही प्रथम दो और अंतिम दो पंक्तियाँ मीराँ के नाम पर प्रचलित पद की पंक्तियों से हूबहू मिलती हैं। पदाभिव्यक्तियों की संगति इन पदों में दूसरा विचारणीय पहलू है। "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर" जैसी भावना के साथ उपर्युक्त वियोगाभिव्यक्ति की संगति उचित प्रतीत होती है जब कि "चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव" जैसी भावना के साथ उपर्युक्त वियोगाभिव्यक्ति का समन्वय संगत नहीं सिद्ध होता।

८

मिलता जाज्यो (जी अभिमानी), थांरी, सूरत देख लुभानी।
म्हांरो नाव थे जाणो (ही छो), (म्हैं छां) राम दिवानी।
आमी सामी पोल नन्द की, चन्दन चौक निसानी।
थे म्हांरे आवो बंसीवारा, करस्यां बहुत लडानी।
कराँ रसोई (साज के) थांरी, बहुत (करां) मिजमानी।
थे आवो हरि धेनु चरावण, म्हें जल जमुना पानी।
थे नन्द जी का लाल कहाओ, म्हें (गोकुल) मस्तानी।
जमुना जी के नीराँ तीराँ, थे (रह्यो) धेनु चराज्यो।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, नित बरसाणे आज्यो।

निम्नलिखित पाठ भेद भी मिलता है :—

मिलता जाज्यो राज गुमानी, थाँरी सूरत देख लुभानी।
म्हाँरो नाव थे बूझो मैं छूं राम दिवानी।
आमी सामी पोल नन्द के, चन्दन चोक निसानी।
थे म्हाँरे घर आवो वंसीवारा, करस्यां बहुत लडानी।
कराँ रसोई सोद की, थांरी बहुत करू मिजमानी।
थे आवो हरि धेनु चरावण, जल जमुना पानी।
थे नन्द जी को लाल कुहावो, म्हें गोपी मस्तानी।
जमुना जी के नीराँ तीराँ, थे हरी धेनु चराज्यो।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, नित बरसाणे आज्यो।

दोनों पाठ-भेदों में छठीं और आठवीं पंक्ति अर्थ-हीन है। साथ ही. संपूर्ण पदाभिव्यक्ति में भी अर्थ-सामंजस्य नहीं होता। ऐसा ही एक पद मीराँ के नाम पर भी निम्नांकित रूपेण प्रचलित है:-

मिलता जाज्यो हो गुरु ज्ञानी, थांरी सूरत देखि लुभानी।
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूं बिरह दिवानी।
रात दिवस कल नाहीं परत है, जैसे मीन बिनु पानी।
दरस बिना मोहे कछु न सुहावे, तलफ तलफ मरजानी।
मीराँ तो चरणन की चेरी, सुन लीजै सुखदानी।
(पृ० ३१० पद ६)

प्रथम पंक्ति में "गुरु ज्ञानी" के बदले कहीं-कहीं "हो जी गुमानी" पाठ भी मिलता है जो चन्द्रसखी के पद से अधिक साम्य रखता है।

मीराँ के नाम पर प्रचलित पद में अर्थ-सामंजस्य व भाव-गांभीर्य दोनों ही है, जब कि चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित पद में दोनों का ही सर्वथा अभाव है। इतना ही नहीं, चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित पद की कुछ पंक्तियों में अर्थ और लय का भी अभाव ही है। अस्तु, मेरे विचार से ऐसे पदों को मीराँ के पदों का गेय-रूपान्तर मानना ही युक्तिसंगत होगा।

९

बंसीवारो म्हाँरी गली आजा रे।
दिन नहीं चैन रैन नहीं निद्रा, सुपणे में दरस दिखा जा रे।
तुमरी हवेली, हमारो बरण्डो, नैना से नैन मिला जा रे।

मोर मुकुट कानन बीच कुण्डल, अंगन में बंसी बजा जा रे।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, चरणों में ध्यान लगा जा रे।

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन है।

१०

पलक न लागे स्याम बिन, पलक न लागे मेरी।
हरि बिनु मथुरा ऐसी लगत है, चंदा बिन रेण अंधेरी।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बिच बिच जमुना गहरी।
साँवरे की खातर जोगण हूंगी, घर घर दूंगी फेरी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि चरणन की चेरी।

पद की तृतीय पंक्ति का सामंजस्य शेष पद से नहीं होता। उत्तरार्ध के परिवर्तन के साथ यह पंक्ति चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित कई पदों में पाई जाती है।

रूत आई बोले मोर रे, मेरा श्याम बिन जिव दोरा रे।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल करत किलोला रे।
उत्तराखंड से आयी बदलिया, चिमकत है घन घोरा रे।
छिन छिन छिन छिन मेहवा बरसे, आँगन मच रहा शोरा रे।
राधा जी भीजे रंग महल में, स्यालू की कोर किनोरा रे।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, श्याम मिल्याँ जिव सोरा रे।

पद की तृतीय और चतुर्थ पंक्तिमें निम्नांकित पाठ-भेद मिलता है।

उत्तर दिसा से आई बदलिया, चिमकत है घन घोरा रे।
रिम झिम रिम झिम मेवला बरसे, आंगन मच रह्या सोरा रे।

पद की पांचवी पंक्ति अर्थहीन है। शेष संपूर्ण पदाभिव्यक्ति से भी इस पंक्ति की अभिव्यक्ति का सामंजस्य नहीं होता।

१२

बोल बोल म्हाँरा नन्द जी रा लाल, बोल्यां सरसी रे।
मोहन मुखड़े बोल।
बोल बोल म्हांरा जनम सुधारण, बोल्यां सरसी रे।
सांवरा मुखड़े बोल।
मोर मुकुट पीताम्बर प्रभु जी, मुख पर मुरली सोवै[1] रे।
बजा बंसरी तीन लोक में सब को भायो रे।
साँवरा मुखड़े बोल रे।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम को जोग पठायो रे।
आप न आये पतिया न भेजी, कुण बिलमायो रे।
मोहन मुखड़े बोल।
सोलह सहस्र तो गोपियां त्यागी, कुब्जा सो नेह लगायो रे।
चन्द्रसखी ललिता यूं भाखै, हर नहीं आयो रे
सांवरा मुखड़े बोल।

पद के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में सामंजस्य नहीं है। इतना ही नहीं दोनों उद्धांशों की शैली भी विभिन्न है। पद की अंतिम पंक्ति निरर्थक ही प्रतीत होती है। ऐसे पदों को प्रक्षिप्त ही कहना चाहिए। पद नं. २० की दूसरी पंक्ति और इस पद की पांचवी पंक्ति "आप तो······पठायो रे।"

---

१. सोहती है।

हूबहू एक है। "आप न आये पतिया न भेजी।" जैसी अभिव्यक्ति भी पद नं. २० में लगभग इसी रूप में मिल जाती है।

१३

कुञ्ज बन त्यागी जी माधो, माधो जी, म्हांरी काई गुणा तकसीर।
जो मैं होती जल की मछलियां, हरी करता असनान,
चरण बीच रहती जी, माधो।
जो मैं होती मोर की पँखवाँ, हरी के शीश पर मुकुट,
मुकुट पर रहती जी, माधो।
जो मैं होती बांस की बंसुरिया, हरी लेता मने हाथ,
अधर मुख रहती जी, माधो।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरी के चरण बिच ध्यान,
कृष्ण संग रहती जी, माधो।

पाठान्तरः

म्हाँरी कौन गुन्हा तकसीर,
कुञ्जन वन क्यों छोड़ी जी, माधो।
जो मैं होती जल की मछलिया,
हरी करते असनान, चरण बिच तिरती जी, माधो।
जो मैं होती बांस की बंसुरिया,
बंसी बजाते जी नन्दलाल, अधर रस पीती जी, माधो।
जो मैं होती मोर की पंखियाँ,
हरी के सीस पर मुकुट, मुकुट पर रहती जी, माधो।

जो मैं होती सीप का मोती,
हरी के गले बिच हार, हार में रहती जी, माधो।
जो मैं होती गऊ नन्द घर,
चारत नन्द किशोर, दरस नित करती जी, माधो।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव,
हरी के चरण बिच ध्यान, कृष्ण संग रहती जी, माधो।

१४

ना जाणूं कद घर आसी, नणदी को बीर।
पंडित आवो सुगन मनावो, जिया धरत नहीं धीर।
हम को छांड़ि द्वारिका छाये, कहा भयी तकसीर।
दिन नहीं चैन रैन नहीं निद्रा, उठत विरह की पीर।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, आखर जात अहीर।

१५

सांची कह दो महाराज, बिरज कद आवोला।
सरब[1] सोवणी[2] बनी रे द्वारिका, मथुरा की छिव नाँय।
जब हरी छोड़ी मथुरा नगरी, गोरस का रस नांय।
ग्वाल बाल सब सखा ज मोहे, गोकुल गांव।
बिरखभान की कुंवरि मोहीं, राधे उन का नांव।
वृन्दावन की कुंजगलिन में, भयी चौमासी[3] रैण।
पहली प्रीत करी हरी हम से, पीछे लगे दुःख देण।

१—सर्व। २—सुन्दर। ३—चतुर्मास।

हम मथुरा की गुजरी, तुम गोकुल के कान्ह।
चन्द्रसखी मोहन का मिलना, मिले न बारंबार।

पदाभिव्यक्ति में सामंजस्य का अभाव है। टेक की प्रणाली भी सर्वथा नूतन है।

१६

ए री, मैं खड़ी निहारूँ बाट।
चितवन चोट कलेजे बह गयी, सुन्दर श्याम सुघाट।
मथरा में कर राखी कुबजा, वाणीये की सी हाट।
केसर चन्दन तिलक कीन्हां, मोहन तिलक ललाट।
हमारी पिलंग जड़ाऊं छोड़ी, वाणिया पीला पाट।
क्यां पर राजी भयो सांवरो, चेरी के नहीं खाट।
अजहूं न आयो कंवर नन्द को, क्यां रे लाग्यो चाट।
छांड़ गयो मझधार सांवरो, बिना अकल रो जाट।
तुमरे बिन गोपी ब्रज की, सब व्याकुल भयी रे निराट।
चन्द्रसखी ने दरसण दीज्यो, कीज्यो आणंद ठाट।

१७

परसों जो पिया आवण कह गये, कब आवेगी वैरण परसों।
जिया चाहत उड़ जाय मिलूँ, मोसे उड्यो न जाय बिना परसों।
घनश्याम नहीं बरसा रुत आयी, दुःख देत पपीहा ऊपरसों।
घन गरजै बिजली चमकै, मेहा कहै बरसो बरसो।
आज कहै कोई कल कहै कोई, कोई कहै परसों परसों।
चन्द्रसखी पर किरपा कीज्यों, वीनती कहियो हर सों।

पद की दूसरी और चौथी पंक्तियों का उत्तरार्ध अर्थहीन है। पद की पाँचवीं पंक्ति का शेष पद से अर्थ-सामंजस्य नहीं होता। अन्तिम पंक्ति के उत्तरार्ध में सम्बोधन किस के प्रति किया गया यह सम्पूर्ण पदाभिव्यक्ति में कहीं से भी स्पष्ट नहीं होता। ऐसे पदों को गेय-परम्परा की देन ही मानना उचित होगा।

१८

लिख भेजूं सन्देशो, आवो म्हांरा बालमा के देस।
लिखूं री पतियाँ, भेजूं री बतियाँ, कागद काली रेख।
चंपो फूल्यो मरवो फूल्यो, फूल रह्यो चहुँ देस।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, साँवरियो अवधेस।

पद की प्रथम पंक्ति का उत्तरार्ध और दूसरी पंक्ति सर्वथा अर्थहीन है। अन्तिम पंक्ति का उत्तरार्ध अपनी विशेषता रखता है। "साँवरियो अवधेस" जैसी अभिव्यक्ति भक्ति-साहित्य के इतिहास में और कहीं प्राप्त नहीं होती। न इस अभिव्यक्ति से ही सामंजस्य होता है।

१९

पाती, सखी! माधो जी की आई।
आप न आये श्याम मनोहर, उधव हाथ पठायी।
बिन दरसण व्याकुल भयो जिवड़ो, नैनन नीर बहायी।
मन सकुचाय ओट घूंघट की, पतियाँ छतियाँ लगायी।
कपट की प्रतीत करी मनमोहन, मोरी सुध बिसरायी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, दरसण बिन अकुलायी।

२०

कोई कहियो रे मोहन आवन की।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम को जोग पठावण की।
आप न आवे पतिया न भेजे, बात करे ललचावन की।
ए दोऊ नैण कह्यो न मानै, घटा उमड़ रई सावण की।
दिल चाहत उड़ जाय मिलूं, पर पाँख नहीं उड़ ज्यावण कीं।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कंवल लपटावण की।

पद की प्रथम पंक्ति का शेष पद से अर्थ सामंजस्य नहीं होता। पद सं० १२ में "आप तो जाय.....बात करत ललचावन की" जैसी अभिव्यक्ति लगभग हुबहू इसी रूप में मिल जाती है। लगभग इसी रूप में यह पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है।

कोई कहियो रे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की।
आप नहीं आवे, लिख नहीं भेजे, बाण पड़ी ललचावन की।
ये दोऊ नैना कह्यो नहीं मानै, नदिया बहे जस सावन की।
कहा करूं कछु बस नहीं मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की।
मीराँ कहै प्रभु कबर मिलोगे, चेरी भई हूँ तेरे दावन की।

उपर्युक्त दोनों पदों में भाव-भाषा का गहरा-साम्य है। यदि चन्द्रसखी के पद से द्वितीय पंक्ति को हटा दिया जाय तो दोनों पदों का एक दूसरे का गेय-रूपान्तर मात्र ही कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में पद की प्रामाणिकता का निर्णय एक गहरी उलझी हुई समस्या ही सिद्ध होती है। तथापि चन्द्रसखी के अन्य पदों में हुई गड़बड़ी तथा इन दो पंक्तियों

के भाव-भाषा के इस गहरे साम्य के कारण यह कहा जा सकता है कि संभवतः मीराँ का पद ही गेय-परंपरा के प्रभाव वश कुछ परिवर्तनों के साथ चन्द्रसखी के नाम पर चल पड़ा हो।

२१

हे री कुबजा ने जादू डारा।
जिन मोय लिया स्याम हमारा।
सोल सहस्र गोपिका त्यागी, कुबजा के संग सिधारा।
निरमल जल जमुना को त्याग्यो, जाय पिया जल खारा।
ठंडी ठंडी छाय कदम की त्यागी, धूप सहे सिर भारा।
जादू कीन्हां, टूना कीन्हां, पढ पढ मंतर मारा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, आखर श्याम हमारा।

ऐसा ही एक पद मीराँ के नाम पर भी निम्नांकित रूप में प्रचलित है—

कुबज्या ने जादू डारा री, जिन मोहे श्याम हमारा।
झरमर झरमर मेहा बरसे, झुक आये बादल कारा।
निरमल जल जमुना को छांडो, जाय पिया जल खारा।
शीतल छाय कदम की छोडी, धूप सहा अति भारा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, वोही प्राण पियारा।

कहीं-कहीं प्रथम पंक्ति के द्वितीयांश में निम्नांकित पाठान्तर भी मिलता है:—

"बिना भाल सुर मारा।"

यदि मीराँ के पद की द्वितीय पंक्ति "झरमर झरमर·····कारा" हटा दी जाय तो इस पद को चन्द्रसखी के पद का गेय-रूपान्तर कहा जा

सकता है। इस द्वितीय पंक्ति का शेष पदाभिव्यक्ति से कोई समन्वय भी नहीं होता। अतः इस पद को मौलिक रूपेण चन्द्रसखी का माना लिया जा सकता है।

२२

हम पर कुवज्या सोक रची रे।
हम कुलवंती नार छोड़ि के, दासी मन में जँची रे।
प्रीत की रीत कछु न जाणी, पाती एक न बाँची रे।
ओछे की परतीत न करिए, जग में होत हाँसी रे।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, परबस आण फंसी रे।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ-सामंजस्य नहीं।

२३

वो दिन क्यूँ नहीं चितारो।
कुबज्या राजा कंस घर दासी, नित उठ देती बारो।
हाथ कटोरी चन्दन को मुठियो, विसती रो गयो जमारो।
बनरावन में चुराती लकड़ियाँ, चुरा चुरा करती भारो।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, आखर श्याम हमारो।

पदाभिव्यक्ति हास्यास्पद सी प्रतीत होती है। इस पद की अंतिम पंक्ति और पद नं० २१ की अंतिम पंक्ति हूबहू एक है।

२४

कुछ दोस नहीं कुब्जा ने वीर, आपणो श्याम खोटो।
आन न आवें, पतिया न भेजें, कागद रो काँई टोटो।
बिखरी बेल में बिख फल लागे, काँई छोटो काँई मोटो।

जमुना रे नीरे तीरे धेनु चरावे, हाथ चन्दन रो सोटो।
कुबज्या चेरी कंस राय री, वो है नन्द जी को ढोटो।

यद्यपि यह पद चन्द्रसखी के पदों के अंतर्गत ही प्राप्त होता है पदाभिव्यक्ति में कहीं कोई ऐसा सूत्र नहीं जिसके आधार पर इसको चन्द्रसखी का कहा जाय। पदाभिव्यक्ति में अर्थ-सामंजस्य भी नहीं है। कुछ परिवर्तनों के साथ यही पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है:—

कुछ दोष नहीं कुबज्या ने, बीर अपना श्याम खोटा।
आप न आवे पतिया न भेजे, कागद का काँई टोटा।
नोलख धेनु नन्द घर दूझै, माखन का नहीं टोटो।
आप ही जाय द्वारिका छाये, ले समदर की ओटा।
कुब्ज्या दासी नन्दराय की, रे नन्द जी के ढोटा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कुबज्या बड़ी हरी छोटा।

२४

पाठान्तर:

सखी आपणां श्याम खोटा, दोष नहीं कुबज्या में।
आपन हाथि लिख न भेजे, कोई कागज का टोटा।
खारी बेल के कड़ा फल लागा, कहा छोटा कहा मोटा।
कुबज्या दासी कंसराय की, वे नन्द जी के ढोटा।
मीरा के प्रभु हरी अविनासी, हरि चरणाँ का बोटा।

(पृष्ठ २३३ पद ३६६)

मीराँ के नाम पर प्रचलित इस पद और पाठान्तर दोनों में ही अर्थ-सामंजस्य नहीं है। ऐसे पदों को निर्णयात्मक रूपेण गेय-परंपरा की देन मानना ही युक्ति युक्त होगा।

२५

ऊधो नन्दलाल जी से जैगोपाल कीज्यो रे।
हम कूं तज दयी जादूराश्री, कुबरी वा के मन भायी।
हम तो सब जोगन बन बैठी, अब तो राजी रीज्यो रे।
हम तो लागे विष सी खारी, कुबरी लागे बहुत पियारी।
स्याम म्हांरी प्रीत न जानी, दासी कूं पतीज्यों रे।
चन्द्रसखी चरणन की दासी, ललिता छै दरसण की प्यासी।
एक बार फिर आके दरसण दीज्यो रे।

चन्द्रसखी और ललिता दोनों का संयुक्त वर्णन इस पद और पद सं. १२ की विशेषता है। ऐसी अभिव्यक्तियाँ पद की प्रामाणिकता को संदिग्ध सिद्ध करती है।

२६

ऊधो वैगा जाज्यो जी।
कहजो म्हाँरा सांवरा ने, महलां आज्यो जी।
कब का गया म्हांरी सुध ना लयी।
चाँदणी सी रात म्हाँरी वैरण भयी।
सावण मास सुहावणा, बागाँ कोयलिया बोलै।

पापी रे पपैया सो मेरो प्राण क छोलै[1] ।
कोयल बचन सुहावणा, बोलत अमरित वैण ।
कहो काली कैसे भयी, किस विध राते नैण ।
कृष्ण पधारे द्वारिका, जब के बिछुड़े मिले न ।
कलप कलप काली भयी, रोय रोय गम गये नैण ।
साँवरो बालम फेर मिलै, म्हें तन मन बारां जी ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हर चरणां चित धारां जी ।

पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह पद दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथमांश है, "ऊधो वेगा······प्राण क छोलै" जिसमें वियोगिनी अपनी भावना का वर्णन करती है। द्वितीयांश हैं "कोयल बचन ······गम गये नैण" "अन्तिम दो पंक्तियाँ अभिव्यक्ति के आधार पर प्रथमांश से ही संबंधित प्रतीत होती हैं" जो कोयल के प्रति की गई एक मधुर कल्पना की अभिव्यक्ति है। इस पद का निम्नांकित पाठान्तर भी मिलता है।

पाठान्तर:—

कब का गया, म्हाँरी सुध न लयी।
चाँदणी सी रात, म्हाँरी वैरण भयी।
सावण मास सुहावणा, बागाँ कोयलिया बोलै।
पापी रे पपैया सो, मेरा प्राण क छोलै।
कोयल वचन सुहावणा, बोलत अमिरत बैण।

---

१ छीलना।

कहो काली कैसी भयी, किस विध राते नैण।
कृष्ण पधारे द्वारिका, जब के बिछुड़े मिले न।
कलप कलप काली भयी, रोय रोय राते नैण।

पाठान्तर भी अपूर्ण ही प्रतीत होता है। उपर्युक्त आधार पर इस पद को भी लोकगीत की ही देन मानना युक्त प्रतीत होता है।

२७

तेरी खातर श्यामाँ वे मैं योगिन होइयां।
अंग अंग छाई श्यामा वे मैं मलमल रोई प्रीत लगी तब वारी।
केधर जावां श्यामां वे मैं केन्हूं आखा।
प्रीत लागी श्यामां दिल अंदर राखा।
बिरही दी अग्नि कर के मैं जारी।
तै तां श्यामां मेरी सुधहू न लीनी।
व्याकुल का के वे मैं कमली कीनी।
चन्द्रसखी बलिहारी।

चन्द्रसखी के नाम पर प्राप्त भजनों के अंतर्गत यहीं एक ऐसा है जिस की भाषा पर पंजाबी प्रभाव स्पष्ट हो उठता है। अभिव्यक्ति भी अर्थहीन है। ऐसे पदों को लोकगीत परंपरा की देन ही समझना चाहिए।

प्रेम माधुरी

१

गागरिया जनि फोरों लालजी, न तोहिं देवूगीं गारी।
हम जेमुना जल भरन जात रहीं, बीच मिले गिरधारी।
गागरी फोरी मोरी बहियाँ मरोरी, मुतियन की लर तोरी।
तुम हो ढोटा नन्दराय के, हम बृषभानु दुलारी।
जाय पुकारूं कंसराय पै, खड़े रहौ गिरधारी।
लेके चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल मांह उघारी।
चीर तुम्हारो जब हम देंगे, जल से हो जाव न्यारी।
जल से अलग होय हम कैसे, तुम पुरुष हम नारी।
पुरइनि पात पहिर कै निकसी, कृष्ण हमें दे तारी।
मथुरा के सब लोग हंसत है, गोकुल की सब नारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तुम जीते हम हारी।

इस पद की तीन पंक्तियाँ "लेकर चीर कदम चढ़ि बैठे·········तुम पुरुष हम नारी" हूबहू मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है, कौन पद किस रूप में और किस का लिखा हुआ है इस का निर्णय करना अद्यावधि प्राप्त अपर्याप्त सूत्र के आधार पर सम्भव नहीं।

२

हमरी तेरी नाय बने गिरधारी।
तुम नन्दजी के छैल छबीले, मैं बृषभानु दुलारी।
मैं जल जमुना भरन जात ही, मग में खड़े बनवारी।

चीर हमारो देवो रे मोहन, सास सुणे दे गारी।
तुमरो चीर जभी हम देंगे, जल से हो जावो न्यारी।
जल से न्यारी किस बिध होवैं, तुम पुरुष हम नारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तुम जीते हम हारी।

पाठान्तरः—

म्हांरी नाय बने गिरधारी।
ले मेरो चीर कदम चढ़ि बैठो रे, हम जल माँही उघारी।
तुम रो चीर राधे तम ने देस्याँ, हो जावो जल से न्यारी।
जल से न्यारी कान्हां किस विधि, होंउ आवत लाज बिहारी।
हमरी लाज राधे क्या करति है, हम हैं पुरुष तुम नारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तुम जीते हम हारी।

इन दोनों पदों की भाव-भाषा-साम्य विचारणीय है। पद नं० १ की दूसरी पंक्ति है

"हम जमुना जल भरन जात रही, बीच मिले गिरधारी" पद नं० २ की तीसरी पंक्ति हैः—

"मैं जल जमुना भरन जात रही, माग में खड़े बनवारी"

इसी तरह पद नं० १ की चतुर्थ पंक्ति हैः—

"तुम हो ढोटा नन्दराय के, हम वृषभानु दुलारी"

और पद नं० २ की दूसरी पंक्ति हैः—

"तुम नन्द जी के छैल छबीले, मैं बृषभानु दुलारी"

इसी तरह पद नं० १ उत्तरार्ध, "लेके चीर कदम चढ़ि बैठे...... तुम जीते हम हारी" और पद नं० २ की अंतिम तीन पंक्तियों में लगभग

एक सी ही भाषा में एक ही भावाभिव्यक्ति हुई है, पद नं० १ की ६ठीं ७वीं ८वीं और अन्तिम पंक्ति हूबहू पद नं० २ की अन्तिम तीन पंक्तियों से मिलती हैं, यहाँ तक कि पद नं० २ का पाठान्तर तो पद नं० १ के उत्तरार्ध का गेय-रूपान्तर भी कहा जा सकता है।

उपर्युक्त दोनों पदों से साम्य रखते हुये निम्नांकित पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है।

झट द्यो मेरो चीर रे मोरारी, झट द्यो मेरो चीर।
ले मेरो चीर कदम चढ़ि बैठो, मैं जल बीच उघाड़ी।
हारे बाला मैं जल बीच उघाड़ी।
उभी राधा अरज करत है, दो चीर ओ गिरधारी।
प्रभु मैं तेरे पाय परूंगी।
जो राधा तेरो चीर चहावत हो, जल से हो जा न्यारी।
हाँ बाला जल से हो जा न्यारी।
जल से न्यारी कान्हा कबुहूं न होवूगीं, तुम हो पुरुष हम नारी।
लाज मोकूं आवत भारी।
तुम तो कंवर नन्दलाल कहावो, मैं वृषभानु दुलारी।
मीरां के प्रभु गिरधर ना गुण, तुम जीते हम हारी।
चरण जाऊं बलिहारी।

(पृष्ठ २८२, पद ६)

आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदम की डारी हे माय।
म्हारी गैल परयो गिरधारी हे माय, आज अनारी ले गयो सारी।
मैं जल जमुना भरन गयी थी, आगयो कृष्ण मुरारी हे माय।

ले गयो सारी अनारी हा री, जल में उभी उघारी हे माय।
सखी साहनी मोरी हंसत हैं, हंसि हंसि दे मोहि तारी हे माय।
सास बुरी अरु ननद हठीली, लरि लरि दे मोहि गारी हे माय।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल की बारी हे माय।

(पेज २३८, पद १०)

चन्द्रसखी और मीराँ दोनो के ही नाम पर प्रचलित इन पदों की प्रामाणिकता का निर्णय आद्यावधि प्राप्त प्रमाणों के आधार पर तो असम्भव ही प्रतीत होता है तथापि, अधिक सम्भव है कि यह पद चन्द्रसखी का ही हो सम्भवतः ऐसे पद लोकगीत परम्परा की ही देन सिद्ध हो। उपर्युक्त पदो की भाषा पर आधुनिक राजस्थानी का प्रभाव है और भावाभिव्यक्ति में भी वह गाम्भीर्य नहीं जो मीराँ के पदों की विशेषता है।

हमारा संत-साहित्य गेय-परम्परा से कितना अधिक प्रभावित हुआ है यह तो उपर्युक्त पदों से प्रत्यक्ष ही हो उठता है।

अंखिया में लागि रहै गोपाल।
मैं यमुना जल भरण जात रही, फेलायो जंजाल।
रुनुक झुनुक पग नूपूर बाजै, चाल चलत गजराज।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, संग सखा ब्रजराज।
बिन देखै मोहि कल न परत है, निशि दिन रहत बिहाल।
लोकलाज कुल की मरयादा, निपट सुभ्रम का जाल।
वृन्दावन में रास रच्यो है, सहस गोपी इक लाल।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माल।

शंख चक्र गदा पद्म विराजै, बांके नयन विसाल।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चिरजिवहूँ नन्दलाल।

पदाभिव्यक्ति मे अर्थ-संगति नहीं है। विभिन्न पदांशों का मिलजुल कर एक स्वतन्त्र पद के रूप में चल जाना गेय-परम्परा में सम्भव भी है। उपर्युक्त पद गेय-परम्परा की देन ही प्रतीत होती है। चन्द्रसखी के अन्य नाम पर प्रचलित पदों में इस पद की विभिन्न पंक्तियों की हूबहू नकल मिल जाती है। निम्नांकित दोनों पद इसके सर्वोत्तम उदाहरण है।

४

तेरे बाँके मुकुट की छबिन्यारी, शोभा भारी।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, कांधै कामरी है कारी।
वृन्दावन में रास रच्यो है, सहस गोपिका इक गिरधारी।
पीताम्बर की कछनी काछे, मुरली बजावै बनवारी।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, बिहरत है प्रीतम प्यारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल की बलिहारी।

अर्थ-संगति का अभाव है।

५

गिरी न परै गोपाल गिरिवर।
ब्रज की सखी सब पूजन निकसी, भरि भरि मोतियन थार।
इन्द्रहूं कोपि चढ़ेउ ब्रज ऊपर, वर्षत मूसलधार।
सात दिवस मेघवा झर ल्यावै, ब्रज मे परो न फुहार।
शंख चक्र गदा पदुम बिराजै, बाके नयन बिशाल।
ग्वाल बाल सब गिरिवर नीचे, मुरली बजावे नंद को लाल।

पीताम्बर की कछनी काछे, नख पर गिरवर धार ।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, तिलक बिराजे भाल ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, निरखत मुख नन्दलाल ।

उपर्युक्त तीनो पदो मे पदाभिव्यक्तियों "का साम्य प्रत्यक्ष है । यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै", "पीताम्बर की कछनी काछें" जैसे पदांश तीनों पदो में प्राप्त हैं ।

"बृन्दावन में रासरच्यो है, सहस गोपिका इक गिरधारी"

पद नं० ३ और ४ में, तथा "शंख चक्र गदा पद्म बिराजै, बांके नयन बिसाल" पद नं० ४ और ५ मे हूबहू एक है ।

उपर्युक्त आधारों पर भी इन को तीन विभिन्न पद न मान कर एक पद का गेय रुपान्तर मानना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । तुलनात्मक दृष्टिकोण से पद नं० ५ की अभिव्यक्ति ही ज्यादह संगत प्रतीत होती है ।

६

मदन मोहन जी सू लगन लगी है, तन डारु मैं वारि ।
करुणा सिन्धु है जगतबन्धु, संतन के हितकारी ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल की छबि न्यारी ।
गल सोहे बैजन्ती माला, निरखत राधा प्यारी ।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, ओढ़े कामरी कारी ।
पैठि पाताल कालि नाग नाथ्यो, फण पर नाचै गिरधारी ।
इन्द्र चढै कोपि ब्रज ऊपर, नख पर गिरिवर धारी ।
चन्द्रसखी भजु बाल कृष्ण छिब, चरण कमल बलिहारी ।

इस पद मे भी "मोर मुकुट पीताम्बर सोहै गल बैजन्ती माला" "यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, ओढे कामरी कारी" ये दो पंक्तियां क्रमशः पद नं० ३ और ४ मे भी हुबहु मिल जाती हैं। सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति भी लगभग एक सी है। इन चारो ही पदो में कृष्ण विभिन्न की लीलाओं का वर्णन हुआ है अतः पद मे पूर्वापर सम्बन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

७

मुकुट पर वारि जाऊं नागर नन्दा।
डाल डाल मे पात पात मे, तुमरो ही नाम गोविन्दा।
सहस्र गोपिन बीच आप बिराजो, ज्यूं तारन बिच चन्दा।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, बिच केसर का बिन्दा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हरि के चरण चित लेन्दा।

पद की अन्तिम पंक्ति का अन्तिम शब्द "लेन्दा" पंजाबी-प्रभाव द्योतक है।

८

मुकुट पर वारि जाऊं नागर नंदा।
सब देवन में महादेव बड़े हैं, तीरथ में बड़ी गंगा।
दरशण में रणछोड़ बड़े हैं, तारन मे बड़े चन्दा।
सब भगतन में भरत बड़े हैं, जोधन में हणमंता।
सब सखियन मे राधे बड़ी है, गोपन मे गोविन्दा।
पैस बताल कालिनाग नाथ्यो, फण फण निरत करंदा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तुम ठाकुर हम बंदा।

९

वारि जाऊं नागर नन्दा ।
सब देवन में कृष्ण बड़े हैं, ज्यों तारों में चन्दा।
सब सखियन में राधे बड़ी हैं, ज्यों नदियों में गंगा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, काटो जम के फंदा।

१०

सूरत पर वारि जाऊं नागर नन्दा ।
सब देवन में कृष्ण बड़े हैं, ज्यों तारण में चन्दा।
सब सखियन में राधे बड़ी है, ज्यों नदिग्रन में गंगा।
पैस पयाल कालिनाग नाथ्यों फण फण निरत करन्दा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, काटो जम के फंदा।
बृन्दावन में रास रच्यो है, निरत करतु गोविन्दा ।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूं बताये घर धंदा।

पद ९ ही कुछ कमबेश विशेषतः अन्तिम दो पंक्तियों के साथ जुट कर इस रूप में चल पड़ा है। इस पद की तीसरी पंक्ति और ८ की पांचवीं पंक्ति हूबहू एक है, अतः इस पद को निश्चित रूपेण गेय-परम्परा की देन ही समझना चाहिये, जो कुछ पद नं० ३, ४, ५ के बारे में कहा गया है वही इन पदों के बारे में भी कहा जा सकता है।

ऐसा ही एक पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है:—

नागर नंदा रे मुकट पर वारी जाऊं नागर नन्दा।
वनस्पति में तुलसी बड़ी है, नदियन में बड़ी गंगा।
सब देवन में शिव जी बड़े हैं, तारन में बड़ा चंदा।

सब भक्त में भरथरी बड़े हैं, शरण राखो गोविन्दा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल चित चंदा।

(पृष्ठ २५५, पद ३४)

११

माई मोहे लागत वृन्दावन नीको।
जमुना जल एक नीर बहत है, भोजन दूध दही को।
घर घर ठाकुर पूजा, दरसन श्रीपति जी को।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, कृष्ण बिना सब फीको।

इस पद से मिलते जुलते दो निम्नांकित पद मीराँ के नाम पर भी प्रचलित हैं।

आली म्हाँने लागे वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत जमुना में, भोजन दूध दही को।
रतन सिंवासन आप बिराजैं, मुकुट धर्यो तुलसी को।
कुञ्जन कुञ्जन फिरत राधिका, सबद सुनत मुरली को।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, भजन बिना नर फीको।

(पृष्ठ २७६, पद २)

उधो म्हांने लागे वृन्दावन नीको रे।
वृन्दावन में धेनु बोहोत है, भोजन दूध दही को।
मोर मुकुट पीतांबर सोहै, सिर केसर को टीको।

घर घर तुलसी को बिड़लो, दरसण माधव जी को।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरी बिना सब फीको।

(पृष्ठ २७६, पद ३)

उपर्युक्त तीनों पदों में भाव-भाषा का गहरा साम्य विचारणीय है। यह पद किस रुप में और किस का है यह कहना असंभव ही है।

१२

ब्रजमंडल देस दिखाया, रसिया।
तेरी रे बिरज में गाय बहुत है, धोली धोली गाय सुरंग बछिया।
तेरी रे बिरज में मोर बहुत है, बोलत भोर फटत छतियां।
तेरी रे बिरज में नार बहुत है, आछी आछी नार मरद रसिया।
तेरी रे बिरज में चावल धोला, हरी हरी मूंग उड़द कचिया।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, नंद जी को लाल हिये बसिया।

१३

ब्रजमंडल देस दिखावो रसिया।

ब्रज मंडल को आछो निको पाणी,
गोरी गोरी नार सुघड़ रसिया॥ १॥
अगर चन्दन को ढाल्यो बिराजे,
अवल रेसमी लुम्बे कसिया॥ २॥
बालापण में गउवा चराई,
तिन देसे बाला बसिया।

मुरली तिहारी सदाहि सुहावे,
मृगनैणी नाचे रसिया ॥ ३ ॥
मटकी फोरी दही म्हाँरो डाल्यो
बाह पकड़ मैली बसिया ।
चन्द्रसखी अब आप मिल्या है ।
कृष्ण मुरारी म्हाँरे मन बसिया ॥ ४ ॥

उपर्युक्त दोनों पदों के प्रथमांश का भाव-भाषा साम्य विचारणीय है ।

१४

बृंदावन जिवनी प्रान हैं ।
बिहरत दोऊ नागरी नागर, रसिकन की रस खानि है ।
सघन कुंज नवकुंज भंवर गूंज, कोकिल की जल कानि है ।
रास बिलास में सहज ही भावे, सदा लाभ नहीं होनी है ।
ललित देषि निरषि हिये हरषत, करत रूप रस पान है ।
चन्द्रसखी हित बालकृष्ण प्रभु, नैन चकोर निधान है ।

पदाभिव्यक्ति में पूर्वापर सम्बन्ध का निर्वाह नहीं हुआ है । अन्तिम पंक्ति का उत्तरार्ध अर्थहीन है ।

१५

मन वृन्दावन चाल वसो रे ।
मान घटो चाहे लोग हंसो रे ।
गुरु बिन ग्यान, गंगा बिन तीरथ ।
एकादशी बिन वरत किसो रे ।
बिन दीपक बिन भवन किसो रे ।

बिना पुत्र परिवार किसो रे ।
मन न मिलै वासो मिलबो किसो रे ।
प्रीत करै फिर पड़दो किसो रे ।
प्रीत के कारण कुटुम तज्यो है ।
नन्द को छबीलो मेरे मन बस्यो रे ।
चन्द्रसखी मोहन रंग राची ।
ज्यूं दीपक में तेल रस्यो रे ।

पदाभिव्यक्ति में तेल पूर्वापद सम्बन्ध का निर्वाह नहीं हुआ है।

१६

आजु बिन्द्रावन रास रच्यो, मैं भी देखन जावूँगी।
सातूँ सिंगार करूँ मोरी सजनी, मोतियन मांग भरावूँगी।
ओढ़ कसूमल पचरंग लहरो, मोहनलाल रिझावूँगी।
तारावल तो तार बजावै, मैं सुरवीण बजावूँगी।
नरहरि नृत्य करैं हर आगे, मैं ग्वालन बन जावूँगी।
मोहन डान मही को मागै, कंस को जोर दिखावूंगी।
इसड़ो रास रचै मोरि सजनी, प्रेम मगन होय जावूंगी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, जोत में जोत मिलावूंगी।

यहि पद निम्नांकित पाठ भेद के साथ भी मिलता है।

नरहरि नृत्य करैं हर आगे, भेरूं राग सुनावूंगी।
ग्वाल होय गिरधारी आवै, मैं ग्वालन बन जावूंगी।

उपर्युक्त पद और उसके पाठान्तर में पूर्वापर संबंध दोनों का ही अभाव है।

पद में प्रयुक्त क्रियापद भी शुद्ध खड़ी बोली के हैं। अस्तु ऐसे पदों को तो निश्चित रूपेण प्रक्षिप्त कहना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

१७

बन आये बनवारी।
शिर पर चंदन खोरि, मोतियन की गल माला डारी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुंडल की छबि न्यारी।
वृन्दावन की कुंजगलिन में, चालत गति अति प्यारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल पर बलिहारी।

कहीं कहीं तीसरी पंक्ति के उत्तरार्ध में निम्नांकित पाठ भेद भी मिलता है।....

चाल चलत अति प्यारी।

१८

रसिया बनो मदन मोहन प्यारे।
फेंट गुलाल हाथ पिचकारी, युवती जन मोहन वारे।
पीताम्बर की कछनी काछे क्रीट मुकुट कुण्डल वारे।
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ वीना, उपंग चंग न्यारे।
चन्द्रसखी प्रभु बालकृष्ण छिब, तन मन धन तो पै वारे।

पदाभिव्यक्ति में अर्थ संगति का अभाव है।

१९

नेक ठाढ़े रहो रसिया, रंग डारों।
अबीर गुलाल मलों मुख तोरे, गुलचा गालन मारों।

चोवा चंदन और अरगजा, घिसि घिसि तो पै डारों।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, तन मन धन तो पै वारों।

२०

देखो री नैना नटनागर ।
सोभित संग रंग भरि प्यारी, अनियारे चष रूप उजागर ।
प्रान अधार प्रान हूं ते प्यारों, सब विधि भजनी पै गुण आगर।
चंद्रसखी छिब बालकृष्ण प्रभु, जगत सिरोमनि है सुख सागर।

२१

प्यारी तेरे अंग में फूलन की बहार।
फूलन के बाजूबंद, फूलन के गजरे, फूलन के सोहे गलहार।
चम्पा मरूवा राय चमेली, सब फूलन में गुलाब ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, सब गोपिन में गोपाल ।
पदाभिव्यक्ति में अर्थ-सामंजस्य नहीं है।

२२

काँई मिस आया छो जी राज अठे।
राय आगणिये में ठाढ़ा रहियो, आगे जाओगा कठे।
राधा रुकमण अर सतभामा, कुबजा ने कांई लीनी पटे ।
हाथ को हीरो खोय दियो है, खोटी लाल सटे ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, लीनी है सीस अटे।

पदाभिव्यक्ति में पूर्वापर संबंध का निर्वाह नहीं हुआ है। पद की तृतीय और अंतिम पंक्तियों का उत्तरार्ध भी अर्थहीन है।

२३

लट उलझी सुरझा जा, मोहन मेरे कर मेंहदी लगी है।
माथे की बिंदिया गिरी रे पलंग पर, अपने हाथ लगा जा।
गले का हार मोरा टूट गया है, अपणे हाथ पहना जा।
सिर की चुनरिया सरक गई है, अपणे हाथ उढ़ा जा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, अपणी सूरत दिखा जा।

बृहद्राग-रत्नाकर में ऐसा ही एक पद नीलाम्बर कवि का मिलता है।

मेरे कर मेंहदी लगी री, लट उलझी सुर्झाय जा।
शिर की सारी सरक गई है, अपने हाथ उढ़ाय जा।
भाल की बेंदी मेरी गिर जो परी है, हा हा करत लगाय जा।
नीलाम्बर प्रभु गुण ना भूलूं, बीरी नेक खवाय जा।

(पृष्ठ ७६, पद २६३)

२४

अंगुरी मोरी मरोर डारी, छीन दधि लीना सांवरो।
हौं जो जात कुञ्जन दधि बेचन, बीच मिले गिरधारी।
अगर सुने मेरी बगर सुनेगी, सास सुन दे गारी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, चरण कमल बलिहारी।

पद की तीसरी पंक्ति का प्रथमांश सर्वथा अर्थहीन है।

२५

सुन्दर वदन कुंवरि काहू की, नित दधि बेचन आवे री।
कबहुँक आवै दधि लुटावै, कबहुँक मुख लपटावै री।
कबहुँक मुरली छीन लेती है, कबहुँक आप बजावै री।
कबहुँक पीतांबर छीन लेतिं है, कबहुँक आप उठावै री।
चन्द्रसखी भजु बाल कृष्ण छिव, यह लील मोहें भावे री।

२६

छांड़ों लंगर मोरी बहियां गहो ना।
जो तुम मोरी बहियाँ गहो, नैणा मिलाय मोरे प्राण हरो ना।
हम तो नारि पराये घर की, हमरे भरोसे गुपाल रहो ना।
बनरावन की कुञ्ज गलिन में, रीत छांड़ि अनरीत करो ना।
जाय पुकारूं कंस राय सूं, तुमरी बातन एक सहो ना।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, चरण कमल चित टारे टरो ना।

यही पद सर्वथा इसी रूप में मीराँ के नाम पर भी प्रचलित है। तथापि इस पद की पांचवीं पंक्ति "जाय पुकारू ....सहो ना" मीराँ के पद में नहीं है। (देखें पृष्ठ २४१, पद ४)

२७

सहेली जमना तट कृण खड़ी।
प्रात समय जल भरन कूं निकसी, अपूर सांझ पड़ी।
सास ननद से छिप कर छानै, कै तेरे पिया से लड़ी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, मोतियन मांग जड़ी।

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन है।

२८

गागरियो रे कान्हा घर धर आवूं रे।
ठाढ़ो रसियो कदम की छैयां,
गागरियो रे कान्हा घर धर आवूं, चुनरिया पलट आवूं।
कर आवूं सोलह सिंगारिया।
बैठ कदम तरे बंसी बजैयो, यहां जो चरेगी तेरी गैया।
ठाढ़ो रहियो कान्हा दूरि मत जैयो।
तोरे मोरे बीच गुसैंया।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, हर चरणां बलि जैयाँ।
"तोरे मोरे बीच गुसैंया" अभिव्यक्ति अर्थहीन प्रतीत होती है।

२९

दिये री दोऊ गर बांही।
श्री वृन्दावन काल्यंदी तट, ठाढ़े सघन कुञ्ज की छांही।
इनके प्राण बसत हैं उन माहीं, उनके प्राण बसत इन माहीं।
बरषत रंग संग सखि हरषत, निरखत दंपति नैन अघाई।
सुख की राशि, रूप निधि सजनी, इक पल री ये बिछुरत नाहीं।
बालकृष्ण छबि जुगुल कंवर मुख, चन्द्रसखी लखि बलि बलि जाँहीं।

३०

डगर मोरि छाड़ो श्याम, बिंध जाओगे नयनन में।
भूल जावोगे सब चतुराई, लाला मारूंगी सैनैन में।
जो तोरै मन में होली खेलन की, तो ले चल कुंजन में।

चोवा चंदन और अरगजा, छिड़कूंगी फागन में।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, लागी हो तन में मन में।

३१

मेरो मन लेगयो बड़ि बड़ि अंखियन वारो कारो हंस के।
भौंह कमान बान जाके लोचन, मेरे हिय रे मारे कस के।
रेजा रेजा भयो री करेजा मेरो, भीतर देखो धस के।
यत्न करो यंत्र लिख ल्यावो, औषध ल्यावो घस के।
रोम रोम विष छाय रह्यो है, कारै खाइयो डस के।
जो कोई मोहीं आन मिलावे, मोहन गल मिलूँगी हँस के।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, क्या री करूं घर बस के।

पाठान्तर।

हंस के मारी मेरा मन ले गयो, आंखनवारो कारो हंस के।
भौंह कवाण बाण जाके लोचण, मेरे हिवड़े मारया कस के।
रेजा रेजा भयो रे करेजा मेरो, भीतर देखो धंस के।
जतन करो जंतर लिख ल्यावे, ओखद ल्यावे घस के।
रोम रोम विष छाय रह्यो है, कारे खायो डस के।
जो कोई मोहन आण मिलावे, गले मिलूंगी हंस के।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब, क्या री करूं घर बस के।

इन दोनों पाठों में जो अंतर है वह अत्यन्त साधारण है। ऐसा ही एक पद मीराँ के नाम पर भी निम्नांकित रूप में प्रचलित है।

बड़ि बड़ि अंखियन वारो सांवरो, मो तन हेरो हंसि के री।
हों जल जमुना भरन जात ही, सिर पर गागरि लसिके री।
सुन्दर श्याम सलोने मूरति, मो हियरे में बसिके री।
जन्तर लिखि ल्यावो मन्तर लिखि ल्यावो, ओषध ल्यावो घसि के री।
जो कोई ल्यावै श्याम वैद कूं, तो उठि बैठूं हंसि के री।
भृकुटि कमान वान बांके लोचन, मारत हिय कसि के री।
मिराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कैसों रहों घर बसि के री।

(पृष्ठ २४१, पद ५)

पाठान्तरः—

हे माँ बड़ि बड़ि आंखियन वारो,
कारो साँवरो मो तन हेरत हँसि के।
भोंहें कमान बान वाके लोचन, मारत हिये री कसि के।
जतन करो, जंतर लिख बांधो, औषध लाऊं घसि के।
ज्यों तोको कछु और बिथा हो, नाहिन मेरो बसि के।
कौन जतन करों मेरी आली, चंदन लाऊं घसि के।
जन्तर मन्तर जादू टोना, माधुरी मूरत बसि के।
सांवरि सूरत आन मिलावो, ठाढ़ी रहूं मैं हंसि के।
रेजा रेजा भयो करेजा, अंदर देखो धंसि के।
मीराँ तो गिरधर बिन देखे, कैसे रहै घर किस के।

इस पाठ में अर्थ और पूर्वापर संबंध दोनों का ही निर्वाह नहीं हुआ है।

३२

हे मां लाड़िलो गुमानी, कान्ह हियरे बस्यो ।
पीताम्बर कटि कछनी काछै, रनत जटित माथे मुकुट कस्यो ।
गहि डार कदम की ठाढ़ों, मृदु मुसकाय म्हाँरी ओर हांस्यो ।
चन्द्रसखी हित बालकृष्ण प्रभु, निरषि दुगन म्हाँरे हियरे फंस्यो ।

"चन्द्रसखी हित बालकृष्ण प्रभु" जैसी टेक इस पद की विशेषता है । ऐसे दो पद निम्नांकित रुपेण मीराँ के नाम पर भी प्रचलित हैं ।

हे री मां नन्द को गुमानी, म्हाँरे मनड़े बस्यो ।
गहेद्रुम डार कदम की ठाढ़ो, मृदु मुसकाय म्हाँरी ओर हंस्यो ।
पीताम्बर कटि कछनी काछे, रतन जटित माथे मुकुट कस्यो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, निरख बदन म्हाँरो मनड़ो फस्यो ।

(पृष्ठ २३२, पद ६)

नन्द को बिहारी म्हाँरे मनड़ो बस्यो छै ।
कटि पर लाल कछनी काछे, हीरा मोती वालो मुकुट धर्यो छै ।
गहिर ल्यो डार कदम की ठाढ़ी गोहज मो तन हरि हंस्यो छै ।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, निरखि दृगन मे नीर भर्यो छै ।

(पृष्ठ २३६ पद ४)

पद की तीसरी पंक्ति सर्वथा अर्थहीन है । इन तीनों पदों में भाव-भाषा-साम्य के आधार पर यह तो निश्चितप्राय ही हो जाता है कि ये तीनों एक ही पद के रूपान्तर हैं तथापि प्रामाणिक पद का निर्णय संभव नहीं ।

३३

मेरे नैनन में राम रस छाय रह्यो री।
जल बिच कमल, कंवल बिच कलियाँ,
कलियां में भंवर लुभाय रह्यो री।
जल बिच सीप, सीप बिच मोती,
मोती में जोति समाय रह्यो री।
बन बिच बाग, बाग बिच बंगला,
बंगले में बालम बुलाय रह्यो री।
चन्द्रसखी, मोहन बिन देख्याँ,
मेरो जीव अकुलाय रह्यो री।

कहीं-कहीं पद की अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त "अकुलाय" के बदले "[illegible]" शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

३४

लाज सनेह भयो झगरो री।
औसर गयो रैन सब बीती, निवरत नाहिं पगरो री।
लाज कहै मोहै काज कहां नेह सो, नेह कहै होहिं अगरोरी।
चन्द्रसखी कहां लाज बिचारी, नेह निधान बड़ी दगरोरी।

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन है।

३५

मथरा जावोगा तो नन्दजी की दुहाई छै ।
बालक बैस गवण कियो मथुरा ।
सारी या तो माधो जी की कमाई छै ।
नान्हा नान्हा कान्हा, थे तो छोटा ब्रजचंद ।
म्हैं तो थारे लोयण लुभायी छै ।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिब ।
चरणन में लव लायी छै ।

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन है ।

३६

मथरा मत जा गिरवरधारी ।
वेण बजा ब्रज वनिता मोहीं, अरज करत सखियां सारी ।
बिन दरसण तन मन धन सब व्याकुल, अरज सुनो बनवारी ।
मथरा माँहै बसत कूबरी, बस करलै जादू डारी ।
तुम तो स्याम सदा के कपटी, छोड़ चले सब ब्रजनारी ।
कुबजा कुटिल कंस की चेरी, वा तो सोक लगे म्हाँरी ।
चन्द्रसखी दरसण की प्यारी, चरण कमल पर बलिहारी ।

३७

कहां बसिया मोहन रातड़ली ।
काई थारो नांव भणीजै सांवरा, कांई थांरी जातड़ली ।

भगत वछल म्हांरो नांव भणीजै, जदुकुल म्हांरी जातड़ली।
काँई सतभामा रे महल पधारया, काँई कुबजा से बातड़ली।
केसरान्यो जामो सलवट भरियो, अटपट दीखै थाँरी पगड़ली।
हाथाँ पगाँ रे बाधियां डोरड़ा रे, हाथां मंहदी राचड़ली।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, आण मिल्या परभातड़ली।

अर्थ-सामंजस्य का सर्वथा अभाव है।

३८

छोटी सी लाडी, राम भजन में कैंया लागी।
सासु बोली सुन मेरी बहुअड़, ऐसा काम नहीं कीजै।
राम नाम तो पीछे लीजै, घर का धंधा कीजै।
बहुअड़ बोली सुन मेरी सासू, ऐसी सीख नहीं दीजै।
राम नाम तो मुख से लीजै, हाथां धन्धा कीजै।

इस पद को चन्द्रसखी द्वारा निर्मित कहने का कोई आधार नहीं है। ऐसा ही एक पद और मिलता है जिसमें निम्नांकित पंक्तियाँ भी जोड़ दी गई हैं।

न्हाती धोती मिंदर जाती, नित चरणां में रहती।
सासू बैठी टमटम झांके, बहू बैकुंठा जाती।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छिव, सुरग पालकी आसी।

ऐसे पदों को कीर्तन-मंडली की देन ही मानना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

परिशिष्ट

देशज (राजस्थानी) शब्दों और मुहाविरों का स्पष्टीकरण

अ

अठे = यहाँ। अघहर = पापहर्त्ता। अगरोरी = प्रमुख।
आमी सामी = आमने सामने। आवोला = आवोगे।

इ

इसड़ो = इसप्रकार का, ऐसा।

उ

उपाड़िया = उखाड़े।

क

कबूँ = कबहूँ, कभी। कवान = कमान। काँई = क्या।
कामणगरी = जादूभरी। कोल = वचन।

ख

खोर = तिलक।

घ

घमोड़ियो = घुमाना। घोल = सम्मिश्रित तरल पदार्थ।
चष = चक्षु। चिटिया = छड़ी।

छ

छिब = छबि का मारवाड़ी अपभ्रंश। छोले = छीलना। छाने = छिपकर।
छो, छी = आदि पद क्रिया पदों की तरह व्यवहृत होते हैं जैसे, था थे, थी, या है, हो आदि क्रियापदों का व्यवहार खड़ी बोली में होता है।

ज

जमारो = कठिन, दुःखमय, या व्यर्थ ही व्यतीत हुआ जीवन।
जादूराई = यदुराज कृष्ण।

जामो = जामा एक तरह का वस्त्र विशेष जो विवाह के अवसर पर वर को पहनाया जाता है। यह प्रायः लाल रंग का होता है, कभी-कभी केसरिया या गुलाबी भी होता है। नीचे से यह घाघरे की तरह होता है और ऊपर से कुछ-कुछ अँगरखे से मिलता हुआ होता है। इस पर प्रायः सलमे-सितारे का काम बना होता है। यदि वर के नाना का परिवार सम्पन्न हुआ तो यह "जामा" विवाह के अवसर पर दिये "ननसारे" के अन्तर्गत ही वर के लिये दिया जाता है।

जिवड़ो = जीव।

झ

झुरै = अत्यधिक लालायित रहना।

ट

टूना = टोना, जादू। टोटो = अभाव।

ड

डोरड़ा = काँगन डोरा। राजस्थान में विवाह के अवसर पर मोली में एक कोड़ी, एक काले कपड़े में नोन्नराई, एक लाख का छल्ला, आदि पाँच चीजें बांध कर एक कंगन सा तैयार किया जाता है जो वर और वधू दोनों के ही क्रमशः दाहिने और बांये हाथ में बांध दिया जाता है। विवाह कार्य के सम्पूर्ण होने तक यह बंधा रहता है, ऐसी मान्यता है। इस कांगन डोरा के बांधे रहने पर वर-वधू, कुदृष्टि आदि उत्पातों से सर्वथा सुरक्षित रहते हैं। इस मान्यता के कारण इसको विशेष महत्व दिया जाता है।

ढ

ढाल्यो = निवार से बुनी हुई छोटी चौकी। ढोटा = लड़का।

ढे बाय = हवा डुलाना, पंखा डुलाना, हवा करना।

त

तलबी = तलब, पुकार । तनिया = डोरी ।

द

दगरोरी = दगा करने वाली । दाँवन = दामन, आँचल ।

दुलाई = दुलारी का अपभ्रंश ।

दुलड़ी, दुलड़ो = मोती का दो लड़ी का हार । दोरा = दुःखी ।

ध

धनियाँ = धनी, मालिक, स्वामी ।

न

नणदी को बीर = ननद का भाई, पति । ननद के भाई देवर जेठ भी हो सकते हैं, परन्तु यह मुहाविरा पति अर्थ में ही रूढ़िवाचक हो गया है ।

नाथली = नथ । नियति = नियत, तबियत, आकाँक्षा ।

निराट = निःशेष । निरत = नृत्य का मारवाड़ी अपभ्रंश ।

प

पंच रंग लहरो = राजस्थान के रंगे हुए दुपट्टे (ओढ़ने) बहुत प्रसिद्ध हैं । इनमें "लेरिया" या "लहरों" एक रंग का भी होता है । यह पांच रंगों में भी रंगा जाता है जो बहुत ही सुन्दर मालूम देता है । ऐसे ही "कसूमल" दुपट्टा भी होता है । यह लाल रंग का होता है जिस पर पत्ती—पीली बुंदी बनी रहती है—विवाह के अवसर पर दुल्हन को यही पहनाया जाता है । यों भी सधवा स्त्रियाँ बड़े चाव से ओढ़ती हैं ।

पटम्बर = पीताम्बर । पतीज्यो = विश्वास किया ।

पकड़ मेली = पकड़ कर रख दिया, पकड़ लिया । पाणी ड़ो = पानी ।

पीढो = ढाल्यो, नीवार से बुनी हुई चौकी । पीरे पीरे = पीले पीले ।

पुंचाय=पहुँचा कर।

पूंची=एक प्रकार का जेवर जो कलाई में पहना जाता है।

पेस=पैठ कर, घुस कर। **पोरी**=पोली, पोल, मुख्य द्वार।

ब

बरण्डो=बगमदा। **बधेगो**=बढ़ेगा। **बान**=आदत।

बिड़लो=वृक्ष। **बिरषभान**=वृषभान, राधा के पिता।

बिलगाई=किसी को भुला कर रख लेना।

बीरी=पान का बीड़ा। **बैस**=वयस, उम्र।

भ

भणीजे=पढ़ना, कहना।

म

महर=कृपा। जहाँ जहाँ नन्दमहर का प्रयोग हुआ है वहाँ 'महर' शब्द कृपा सूचक नहीं हैं। नन्द के लिये महर विशेषण सूरदास के काव्य में भी पाया जाता है।

मरघत=मृग शब्द का बहुबचन कर दिया गया है।

महलाँ=महल में, अभिसार के लिये नियुक्त कक्ष विशेष के अर्थ में रूढ़िवाचक संज्ञा है।

मरवो=एक पौधा विशेष। इसमें हरएक टहनी पर पत्ते बहुतायत से होते हैं और बीच निकलती हुई डाली पर छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह बिलकुल तुलसी की मंजरी जैसी दीखती है। उगते जाड़ों में यह फूलता है। इसकी सुगन्ध बड़ी मादक होती है।

मायल=मायूस। **माय**=भीतर।

मेवला=मेघवा, मेघ, बादल। **मंडी, माड्यों**=बनी, बनाना।

र

रयी=मथनी। **रीज्यो**=रहियो, रहना।

ल

लसिके=शोभायमान है।   लव=लौ, दीपशिखा।

लडानी=लाड़ प्यार, या विशेष स्नेहयुक्त खातिरदारी दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है।

लाडी=बहू। लुम्बे, लुम्ब=रेशम या सूत के बने फुंदे।

लोयणा=लोचन, आँख।

व

वणी=बनी। वेख=वेश। वेरण=दुश्मनी करने वाली स्त्री।

वैरी=दुश्मन। वोट=ओट, आड़, पर्दा।

स

सरग=स्वर्ग।   सहस=सहस्र।   सबद=शब्द।

सरसी=किसी भी क्रिया का विशेष महत्व बढ़ाने के लिये इस शब्द का उपयोग किया जाता हैं। जैसे, बोल्याँ सरसी, बोलना ही पड़ेगा।

करयाँ सरसी=करना ही पड़ेगा।

सोयाँ सरसी=सोना ही पड़ेगा।

खायाँ सरसी=खाना ही पड़ेगा।

जिस क्रिया को किए बिना जीवन चल नहीं सकता ऐसी महत्ता प्रदर्शित करने के हेतु ही इस शब्द का प्रयोग होता है।

सिमाद्यूं=सिलवा दूँ।

सिणगार=शृंगार का अपभ्रंश।

सोक=सौत।

सोध=शुद्ध का अपभ्रन्श। छूआछूत का पूरी तरह से ख्याल रख कर बरती गई पवित्रता के अर्थ में रूढ़िवाचक संज्ञा।

सोरा=सुखी।

श

शोरा=शोर, कहीं कहीं इस के अशुद्ध उच्चरित रूप सोरा भी प्रयोग मिलता है।

राजस्थानी पदों में प्रायः लय की अभिन्नता बनाये रखने के लिये ह्रस्व मात्राओं की अवहेलना कर दी जाती है। चषु का चष, फिरत का फरत, मथुरा का मथरा आदि शब्दों में परिवर्तन हो जाना अत्यधिक स्वाभाविक है। इसी तरह लय की संगति बैठाने के लिये भाषा के देशज प्रयोगों के अनुसार 'फूल' का 'फुलना' पाने का "पावन" (प्राप्त करना) आदि भी कर दिया जाता है। कहीं कहीं लय संगति के वृत्ति शब्दों के बीच न, क आदि अक्षर जोड़ दिये जाते हैं जैसे "प्राण क छोलै" तो कहीं कहीं निरर्थक मात्राओं का भी व्यवहार होता है जैसे "यमला अजुन वृक्ष उपारे" "यमला अर्जुन" का शुद्ध प्रयोग होगा "यमलार्जुन"। लोक गीतों में व्याकरण द्वारा प्रति पादित भाषा की शुद्धता पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना लय संगति को बनाये रखने पर। अस्तु कुछ निरर्थक अक्षरों और शब्दों का घट बढ़ जाना लोक-साहित्य में विशेष रूप से मिलता है। राजस्थानी लोक गीतों में प्रायः ऐसा ही हुआ है।